

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180167

UNIVERSAL
LIBRARY

शरत्-साहित्य

बाम्हनकी बेटी, प्रकाश और छाया, बिलासी,
एकादशी-बैरागी, बाल्य-स्मृति



अनुवादकर्ता

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

पहली बार
१९३७

~~~~~  
मूल्य दस आने

मुद्रक—  
रघुनाथ दिपाजी देसाई,  
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,  
६, केळेवाडी गिरगांव मुंबई.

## प्राक्थन



युग-प्रवर्तक महात्मा गाँधीने गुजराती-साहित्य-सम्मेलनके गते अधिवेशनमें सभापतिकी हैसियतसे कहा था—“ एक स्त्रीशिक्षा-प्रचारक संस्थाको यह शिकायत है कि साहित्यकार स्त्रियोंको वास्तविक रूपमें चित्रित नहीं करते। स्त्रियाँ उनसे पूछती हैं, ‘आपने स्त्रीका सौन्दर्य कहाँ देखा है? उनकी देहकी सुन्दरतासे आपका क्या सम्बन्ध है? कभी आपने माताका और पत्नीका सौन्दर्य निहारनेका कष्ट उठाया है? मेरे मर जानेके बाद क्या आप मेरी सुन्दर देहमें मसाला भरकर उसे घरमें रखे रहेंगे?’ और जब वे ऐसा पूछेंगीं तो साहित्यकार जरूर शर्मिन्दा हो जायगा। आधुनिक पुस्तकोंमें स्त्रीका सच्चा वर्णन नहीं मिलता। मैं समझ नहीं सकता कि स्त्रीके शरीरके वर्णनोंसे आपका क्या ताल्लुक है? साहित्यमें स्त्रियोंको गुड़िया क्यों बनाया जाता है, उनके मातृरूपका वर्णन क्यों नहीं किया जाता? यह मैं उक्त संस्थाकी सौ-पचास बहिनोंके विचारसे नहीं कह रहा हूँ; बल्कि, स्त्री-हृदयकी थाह लेकर कहता हूँ। साहित्यके लिए जब आप कलम उठायें तो यही सोचकर उठाइए कि स्त्रियाँ मातायें हैं। इस विचारसे जब आप लिखेंगे तो आपकी कलमसे स्त्रीके बारेमें जो कुछ निकलेगा वह उतना ही सुन्दर और फलप्रद होगा, जितने कि सुहावने आकाशसे बरसनेवाले बादल, जो पृथ्वीरूप स्त्रीको उपजाऊ बनाते हैं। ”

मालूम होता है कि स्वनामधन्य शरत् बाबूने महात्माजीके इस अनुरोधको पहले-से ही मान लिया है और उन्होंने अपनी रचनाओंमें स्त्री-पात्रोंको इसी प्रकारकी भावनाओंसे चित्रित किया है। उनके हृदयमें स्त्रियोंके प्रति बहुत ही अधिक आदर-भाव है। उनकी लिखी हुई सारी रचनाओंको आप पढ़ जाइए, उनमें न तो कहीं आपको स्त्रियोंके शरीर-सौन्दर्यका वर्णन मिलेगा और न अन्य किसी तरहकी

अश्लीलता । एक बार उन्होंने स्वयं 'बंगवाणी' में लिखा था कि, 'आलिङ्गन तो दूरकी बात है, चुम्बन भी मैं अपनी रचनाओंमें कहीं न लिख सका ।' वास्तवमें शरच्चन्द्र कुछ कुछ उस ढंगके साहित्यकारोंमें हैं जिन्हें अंग्रेजीमें 'प्यूरिटन' कहते हैं । उनके अधिकांश नायक-नायिका सर्वदा ही यौन-मिलनसे दूर रहे हैं । उनका प्रेम बहुत ही संयत और बहुत ही त्यागमय चित्रित हुआ है । वे सचमुच ही स्त्रियोंमें मातृ-भावका ही विशेषरूपसे दर्शन करते हैं और बाह्य सौन्दर्यकी अपेक्षा उनके भीतरी सौन्दर्यको ही महत्त्व देते हैं । इसीलिए, शरत् बाबूकी कलमसे जो कुछ निकला है, वह बहुत ही सुन्दर और फल-प्रद है ।

शरत् बाबू मातृ-जातिके प्रति समाजके अत्याचारोंको सहन नहीं कर सकते; परन्तु, फिर भी, वे सुधारक नहीं हैं; वे सुधारकसे बहुत ऊँचे हैं । वे कलाकार हैं । सुधारक जिस नींवपर अपनी इमारत खड़ी करता है कलाकार उस नींवकी भी नींव निर्माण करता है । सुधारक केवल मनुष्यकी बुद्धिको अपील करता है; परन्तु, कलाकार उसके अन्तर्तम निगूढ़ प्रदेशों तकको हिला देता है । सुधारकका लक्ष्य मस्तक है जब कि कलाकारका हृदय ।

शरत्साहित्यके इस भागमें,—प्रारंभका एक उपन्यास, तीन कहानियाँ और अन्तका एक रेखा-चित्र,—इस तरह सब मिलाकर पाँच कृतियाँ प्रकाशित हो रही हैं और जहाँ तक हम जानते हैं हिन्दीमें ये पाँचों ही नई हैं ।

**बाम्हनकी बेटी**में ('बामुनेर भेये'में) सन्ध्या और अरुणका प्रणय बहुत ही सूक्ष्म रेखाओंमें बहुत ही सावधानीसे अंकित किया गया है । वह बहुत ही गूढ़ और मर्मस्पर्शी है । सन्ध्याके मुँहसे वह उसी समय प्रकट होता है जब उसकी माता अरुणको बुला देनेके लिए अपने पतिसे आग्रह करती है । इसके पहले यही माता अरुणके हाथसे कोई चीज़ ले लेते समय उससे छू जानेके कारण सन्ध्याको स्नान करनेके लिए बाध्य कर चुकी थी । वह अकुलीन हीन ब्राह्मण था और विलायत-यात्रा कर आया था । सन्ध्याने कहा—“मा, उन्हें तुम बारबार क्यों अपमानित करती हो ? तुम्हारा उन्होंने ऐसा क्या अपराध किया है ? नहीं, तुम उन्हें इस मकानमें हरगिज़ नहीं बुला सकती । . . . हमारे साथ उनका क्या सम्बन्ध है जो तुम उन्हें रोकोगी कि घर-द्वार बेचकर गाँव छोड़कर मत जाओ ? अगर तुमने उन्हें बुलाया तो मैं तुम्हारी ही कसम खाकर कहती हूँ कि उस तालाबमें जाकर डूब मरूँगी ।” यह उसके भीतरी प्रणयका अभिमानके रूपमें प्रकट

हुआ विस्फोट था । कुल-मर्यादाकी वेदीपर अपने आपको उत्सर्ग करके भी वह अपने प्रेमीके सम्मानकी रक्षाके लिए व्यग्र हो उठी थी । उसे उसकी मर्यादा-रक्षाकी इतनी अधिक चिन्ता हुई कि उसने स्वयं अरुणके घर जाकर कह दिया कि, 'अब तुम मेरे घर न आना ।' और जब अरुण स्नेह-विकल होकर पूछता है, 'प्रायश्चित्त करनेसे क्या इसका कोई उपाय हो सकता है ?' तब वह कहती है, 'एक दिन जिस आत्माभिमानके कारण तुम स्वयं प्रायश्चित्त करनेके लिए राजी नहीं हुए थे, मैं यह कभी न कहूँगी कि तुम उसे विसर्जन कर दो । तुम कुछ भी करो, पर अब यहाँ मत रहो ।' इस प्रेममें कितना संयम है, कितना आत्मोत्सर्ग है ! और अन्तमें तो उसका यह संयम और आत्म-दमन पराकाष्ठापर पहुँच जाता है जब अरुण बहुत-कुछ सोच-विचारके बाद उसके साथ विवाह कर लेनेके प्रस्तावपर राजी हो जाता है । कुछ समय पहले सन्ध्याने स्वयं यह प्रस्ताव किया था, फिर भी वह इस मुँहमौंगी मुरादसे मुँह फेरकर अपने पिताके साथ वृन्दावनको चली जाती है । लेखकने भी यहाँ अपनी कलमपर काबू रखनेका महान् सामर्थ्य प्रकट किया है ।

सन्ध्याका पिता प्रियनाथ डाक्टर एक अद्भुत पात्र है,—बहुत ही सरल, भोला-भाला और स्वप्न-संचालित । वह केवल रोगी देखना और 'रेमिडी सिलेक्ट करना' जानता है, परन्तु यह नहीं समझता कि रोगीका मन कितनी विचित्र चीज़ है । मौतका डर न होनेपर भी रोगी कह सकता है कि मैं दर्दके मारे मरा जाता हूँ या किसी दिन गिरकर मर जाऊँगा । उसके मनकी गति या अनुभूति पुस्तकमें लिखे हुए जैसी सुस्पष्ट नहीं होती । डाक्टरने केवल पुस्तकोंमें पढ़ा है कि कोई चीज़ घिसने जैसा, मलने जैसा, सुई चुभने जैसा या बिच्छूके काटने जैसा दर्द होता है । परन्तु, यह उसे कौन समझावे कि ये सब बातें केवल बातें हैं, मूल चीज है दर्द ? वह बारबार कहता है कि महात्मा हेरिंगने रोगका नहीं रोगीका इलाज करनेको लिखा है; परन्तु, उसके निकट रोग और रोगी दोनों ही पुस्तककी बातें हैं । इसीलिए, जब परान डाक्टरने उसकी होमियोपैथी दवा खाकर उसको निकम्मा बतला दिया, तब इसने भी उसका दिया हुआ कास्टर आइल पी लिया ! वह संसारमें रहता अवश्य है; परन्तु, उसके संसारमें केवल कुछ होमियोपैथी पुस्तकें और कुछ कल्पित रोगी ही हैं । विपिन और परान तो चिकित्सा करते हैं धनोपार्जनके लिए, परन्तु, प्रियनाथ जीता है केवल चिकित्सा करनेके लिए । इसीलिए, वह

रोगी ढूँढ़ता फिरता है और रोगी उसे ढूँढ़ते फिरते हैं। उसके निकट और किसीका मानो अस्तित्व ही नहीं है।

इस उपन्यासमें देहाती लोगोंकी स्वार्थपरता, षड्यंत्रपरायणता और प्रीति-हीन तथा अनुभूतिहीन धर्मनिष्ठाके बड़े ही सजीव चित्र अंकित किये गये हैं। गोलोक गाँवोंका मुखिया सरपंच है। बाहरी आचार-विचारमें वह महान् धर्मात्मा है; परन्तु, वास्तविक धर्म-बोधका उसमें सर्वथा अभाव है। एक अनाथ विधवाका नीचताके साथ सर्वनाश करके वह उसके प्रति जरा-सी भी सहानुभूति नहीं बतला सकता। उस पाजीको जीव-हत्या करनेमें संकोच नहीं, स्त्रीका सर्वनाश करनेमें हिचक नहीं और जिस बेचारीको पाप-पंकमें डुबा दिया उसके प्रति तिल-भर भी करुणा नहीं। रासू बाम्हनी भी उससे कम नहीं है। कहाँ तो वह झूठमूठ ही एक अद्धूत लड़कीसे छू जानेपर नातिनीको नहलाती है और 'धर्म धर्म'की पुकार मचा देती है और कहाँ ज्ञानदाको गर्भपात करनेकी प्रेरणा करनेमें और गोलोकको बदनामीसे बचानेके लिए निरीह प्रियनाथको भी ज्ञानदाके साथ अनुचित सम्बन्ध रखनेवाला कहनेमें नहीं हिचकती। इस तरह, जो धर्म केवल बाहरी आचार-विचारको ही सब-कुछ समझना सिखाता है उसकी परिणति इस धर्महीन निष्ठुरतामें ही होती है।

इस उपन्यासमें जाति और कुलके अभिमानका खोखलापन ऐसी खूबीसे प्रकट हुआ है कि देखते ही बनता है और तब हर्षचरितका यह श्लोक बरबस याद आ जाता है—

‘अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे ।

कुले च कामिनीमूले का जाति-परिकल्पना ॥’

अर्थात् संसार अनादि है,—अगणित पीढ़ियोंसे चला आ रहा है, कामवासना दुर्निवार है,—रोकी नहीं जा सकती, और फिर कुल स्त्री-मूलक हैं,—वासना-दुर्बल स्त्रियाँ ही कुलीनता-अकुलीनताकी जड़ हैं; ऐसी दशामें जाति-कुलकी कल्पना ही क्या हो सकती है? कौन कह सकता है कि हमारे कुलमें अनादि-कालसे कभी किसी स्त्रीने व्यभिचार नहीं किया,—हमारा कुल वैसा ही पवित्र बना हुआ है तथा हमारा कुल और जातिका अभिमान मिथ्या नहीं है?

**प्रकाश और छाया**में (‘आलो ओ छाया’में) निषिद्ध प्रेमकी विशुद्धता अंकित की गई है। इस कहानीका प्रारंभ होता है यशदत्त और बाल-विधवा

सुरमाका अवैध प्रणय लेकर । दोनोंका सम्बन्ध स्नेह और आनन्दसे लबालब भरा है; परन्तु, उसपर विषादकी छाया भी पड़ी हुई है । सुरमाने सोचा कि यज्ञदत्त मेरे कारण अपना जीवन व्यर्थ कर रहा है और तब वह उसका विवाह करनेके लिए व्यग्र हो उठती है । परन्तु, विवाह हो जानेपर उसका मन एक साथ उत्साह और निराशासे भर जाता है । उसने स्वयं ही तो आग्रह करके ब्याह कराया; परन्तु, जब देखा कि यज्ञदत्त स्वयं उस ओर झुक रहा है, तब उसका हृदय निराशासे भर गया । ब्याहके बाद यज्ञदत्तने महसूस किया कि मैंने बड़ी भारी भूल की,—मैंने अपराध किया है और सुरमा मुझे प्राणपणसे क्षमा कर रही है । तब उसने अपनी स्त्रीसे पृथक् रहना शुरू किया,—पति और प्रणयीके कर्तव्यके बीच सामंजस्य बनाये रखनेकी चेष्टा की; परन्तु, उसमें वह सफल नहीं हुआ । प्रतुलकुमारी और सुरमाके प्रेमका यह द्वन्द्व ही इस कहानीमें चित्रित किया गया है ।

बिलासी ठीक अर्थमें कहानी है या नहीं, इसमें सन्देह है, फिर भी यह उत्कृष्ट रचना है । यह केवल मृत्युंजय और बिलासीकी ही व्यक्तिगत कहानी नहीं है । इसके साथ हिन्दू समाजकी स्वार्थान्ध संकीर्णता और जाति-द्वेषके प्रति लेखकने जो अंगुलि-निर्देश किया है, उससे इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है ।

एकादशी बैरागी एक रेखा-चित्र है । एकादशी एक छोटी जातिका अति-शय कंजूस ब्याज-खोर साहूकार है । आसामियोंके साथ उसका व्यवहार बहुत ही निर्मम है, फिर भी उस कठोर अर्थ-पिशाचके हृदयमें स्नेहकी फल्गुधारा बहती है । अपनी कलंकिनी बहनको आश्रय देनेके कारण उसे जाति, कुल, गाँव, समाज,—सब कुछ छोड़ देना पड़ा; परन्तु, वह विचलित नहीं हुआ । उसमें जैसा असीम स्नेह है सत्साहस भी वैसा ही अतुलनीय है । वह अपना प्राप्य किसीसे छोड़ता नहीं और दूसरोंके न्याय्य देनेसे कभी मुकरता नहीं । कहानी छोटी है, प्लॉट बिल्कुल नगण्य है, फिर भी प्रारंभमें एकादशीके सम्बन्धमें जो धारणा होती है वह अन्तमें बिल्कुल परिवर्तित हो जाती है । और मज़ा यह, कि कहानीमें कोई आकस्मिक घटना नहीं, पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें कोई असंगति नहीं ।

बाल्य-स्मृतिमें गदाधरके क्षुद्र जीवनका क्षुद्र इतिहास बहुत ही निपुणतासे अंकित हुआ है । उसकी मेसकी नौकरीका वर्णन बहुत ही संक्षिप्त होनेपर भी सर्वांग-सुन्दर है । उसके बाद चिमनीका दूटना, रुपयोंका चोरी जाना, नौकरीसे

अलग किया जाना और डेढ़ रुपयेका म० आ० भेजना,—इन थोड़ी-सी घटनाओंसे ही उसका जीवन परिष्कृत हो उठा है। वर्णनमें कहीं कोई अतिशयोक्ति नहीं, घटना-बहुलता नहीं,—फिर भी, कहीं अस्पष्टता या असम्पूर्णता नहीं। सुकुमारका शिशु-हृदय भी अनेक रंगोंसे रंजित हो उठा है। गदाधरके जीवनकी प्रत्येक घटना उसके मनमें गहराईसे अंकित हो गई है और उसके हृदयकी वृत्तियाँ गदाधरके संस्पर्शमें आकर परिपुष्ट हो गई हैं। उसके ज्ञानका क्षेत्र बढ़ गया है।

इस भागकी पहली, तीसरी और चौथी,—ये तीन रचनायें बहुत ही मर्मस्पर्शिनी और हमारे सामाजिक विचारोंमें क्रान्ति करनेवाली हैं। ये कट्टरसे कट्टर रूढ़ि-भक्तोंको अपना हृदय टटोलनेके लिए बाध्य करती हैं। यह असंभव है कि इन्हें पढ़कर हमारे हृदयमें हरिजनों, अकुलीनों और पतितोंके प्रति सहानुभूति उत्पन्न न हो। इनका जितना भी प्रचार हो, कल्याणकारी है।

शरत्साहित्यके छोटे भागमें श्रीक्रान्त द्वितीय पर्व और सातवेंमें तृतीय पर्व प्रकाशित करनेका प्रबन्ध किया जा रहा है। छठा भाग शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

निवेदक—

नाथूराम प्रेमी

# बाम्हनकी बेटी

१

मुहल्ला घूमना खतम करके रासमणि तीसरे पहर घर लौट रही थी । साथमें दस-बारह वर्षकी नातिनी आगे आगे चल रही थी । गाँवके कम-चौड़े रास्तेके इस तरफ बँधा हुआ बकरीका बच्चा उस तरफ पड़ा सो रहा था । सामने निगाह पड़त ही दादी नातिनीपर चिल्ला पड़ी—‘अरी ओ छुकड़िया, रस्सी मत लौंघ जाना !—लौंघ गई ? हरामजादी सुरगकी तरफ मुँह उठाके चलती है ? आँखसे दिखता नहीं, बकरी बँधी है !’

नातिनीने कहा—बकरी तो सो रही है दादी ।

“सो रही है । बस अब कोई दोष थोड़े ही है ! मंगल-सनीचरके \* दिन तू खुशीसे रस्सी लौंघ गई,—हैं !”

“इससे क्या होता है दादी ?”

“क्या होता है ! मुँहजली, बाम्हनके घरकी नौ-दस सालकी धींगरी लड़की, इतना भी नहीं सीखी कि बकरीकी रस्सी लौंघना नहीं चाहिए,—हरगिज़ नहीं ! और फिर कहती है,—क्या होता है ! नहीं भइया, इन मुओंके बकरी पालनेके मारे तो, लोगोंका राह चलना मुस्किल हो गया ! ऐं, मंगलके दिन लड़की रस्सी लौंघ गई,—क्यों ? किस लिए बीच सड़कपर बकरी बाँधी जाती है ? पूछती हूँ, उनके घर क्या लड़के-लड़कियाँ नहीं हैं ? उनका क्या कुछ भला-बुरा नहीं हो सकता ?”

---

\* बंगालमें मंगल और शनिवारके दिन इस तरह रस्सीका लौंघना अशुभ समझा जाता है ।

अकस्मात् उसकी दृष्टि पड़ गई एक बारह-तेरह सालकी दूलेकी X लड़कीपर । वह घबराई हुई अपने बकरीके बच्चेको हटाने आ रही थी । उसे देखते ही बुढ़िया अनुपस्थितको छोड़कर उपस्थितपर द्रुत पड़ी । तीखे स्वरमें बोली—तू कौन है री ? मरी, चलती कैसे है, देहसे सटी ही जाती है ! आँख-कानसे कुछ सूझता नहीं तुझे ? लहरीसे अपना आँचल छुआ तो नहीं दिया ?

दूलेकी लड़की सितपिटाकर बोली—नहीं दादीजी, मैं तो हिआँसे जा रही हूँ ।

रासमणिने अपना मुँह बहुत ही विकृत करते हुए कहा—हिआँसे जा रही हूँ !—तुझे हिआँसे जानेकी जरूरत क्या री ? बकरी तेरी ही मालूम होती है ? मैं पूछती हूँ, तू किस जातकी लड़की है ?

“ हम लोग दूले हैं दादीजी । ”

“ दूले ? ऐं ! इतनी अबरमें तूने लड़कीको छूकर नहलवाया, क्यों ? ”

नातिनी बोल उठी—मुझे तो उसने छुआ नहीं दादी—

रासमणिने डाँट लगाई,—तू चुप रह मुँहजली ! मैंने खुद देखा, इस छोकड़ीके आँचलका छोर तुझसे छुआ-सा मालूम हुआ । जा,—तालाबमें डुबकी लगाकर मर,—जा ! नहा ले, तब घरमें घुसना । नहीं, अब तो जात-जनम बचाना भी मुश्किल हो गया ! नीच जातकी बढ़न्त हो रही है, देवता-बाम्हनको अब कोई पूछता ही नहीं । हरामजादी, दूलेके मुहल्लेसे यहाँ आई है बकरी बाँधने, क्यों ?

दूलेकी लड़कीके भय और लजाकी अवधि न रही । वह बकरीके बच्चेको छातीसे लगाकर सिर्फ इतना ही बोली—दादीजी, मैंने नहीं छुआ ।

“ छुआ नहीं, तो इस मुहल्लेमें आई क्यों मरने ? ”

लड़कीने हाथ उठाकर पासहीके किसी एक अदृश्य घरकी ओर इशारा करके कहा—महाराजजीने अपनी उस सारके पीछे हम लोगोंको रहनेकी जगह दी है । माको और मुझे नानीने घरसे निकाल दिया है न, इसीसे ।

किसीकी भी हो और किसी भी कारणसे हां, दूसरेकी दुर्गतिके इतिहाससे रासमणिका क्रुद्ध हृदय कुछ प्रफुल्ल हुआ, और इस रुचिकर संवादको विस्तारके साथ जाननेके लिए कुतूहलके साथ उसने पूछा—अच्छा ? तो कब निकाल दिया ?

---

X बाम्दी-जातकी एक श्रेणी । निम्न-जाति ।

“ परसों रातको, दादीजी । ”

“ अच्छा तो तू एककौड़ी दूलेकी लड़की है ! तो, कहती क्यों नहीं ? एक-कौड़ीके मरनेके साथ ही बुढ़ेने सबको निकाल बाहर किया । छोटी जातके मुँहमें आग ! हाँ तो, उसने निकाल दिया सो क्या तुम लोग बाम्हनोंके मुहल्लेमें आकर रहोगी ? तुम लोगोंका दिमाग तो कम नहीं ! कौन लाया तेरी माँको ? रामतनुका दमाद लाया होगा ? नहीं तो और किसमें ऐसी विद्या है ! घर-जमाई है, घर-जमाईकी तरह रहे; सो तो नहीं, ससुरका धन मिल गया तो क्या मुहल्लेमें भंगी-चमार-डोम-दूले लाकर बसायेगा ? ”

यह कहते हुए राममणिने आवाज़ दी—सन्ध्या, ओ सन्ध्या घरमें है री ?

जरा-सी पड़ी हुई ज़मीनके उस तरफ रामतनु बनर्जीकी खिड़की है । बुलाहट सुनकर पासकी खिड़की खोलकर एक उन्नीस-बीस बरसकी सुन्दर लड़कीने मुँह निकालकर जवाब दिया,—“ कौन बुला रहा है ? ओर ये तो नानी हैं । क्यों, क्या बात है ? ” कहती हुई वह बाहर निकल आई ।

राममणिने कहा—तेरे बापकी अकल कैसी है, सुनू तो बेटा ? तेरे नाना रामतनु बाबू एक नामी कुलीन थे, उन्हींके मकानमें आज बसने लगे बाग्दी दूले ! कैसी धिरनाकी बात है बेटा !

इतना कहकर गालपर हाथ रखकर फिर कहने लगी—अपनी माको जरा बुला दे । जगो इसका क्या इन्तजाम करती है, करे; नहीं तो, चटरजी भइयाके पास जाकर मैं खुद कह आऊँगी । वे तो जमीनदार ठहरे । एक नामी-गरामी बड़े आदमी हैं ! वे क्या कहते हैं, उनसे भी सुन लूँ ।

संध्याने बहुत ही आश्चर्यके साथ पूछा—क्या हुआ है नानीजी ?

“ बुला न अपनी माको ! उसे कहे जाती हूँ क्या हुआ है । ”

इतना कहकर अपनी नातिनीकी तरफ इशारा करके कहा—यह जो लड़की मंगलवारके दिन बकरीकी रस्ती लाँघ गई, और उस दूलेकी छुकड़ियाने जो इसके आँचल छुआ दिया—

संध्याने उस लड़कीसे पूछा—तूने छू दिया है ?

वह बेचारी अब तक उस बच्चेको छातीसे लगाये एक तरफ खड़ी थी, रोने गलेसे अस्वीकार करती हुई बोली—नहीं, जीजी—

रासमणिकी नातिनी भी करीब करीब साथ ही साथ बोल उठी—नहीं, संध्याजीजी, उसने मुझे नहीं छुआ, वो तो वहाँसे—

मगर उसकी बात दादीके 'हुं'कारके मारे यहीं तक निकलकर रह गई ।

“ फिर नहीं कह रही है हरामजादी ! चल तू पहले घर तो चल । छुआ है या नहीं, वहाँ चल कर बताऊँगी । ”

संध्याने हँसते हुए कहा—जबरदस्ती नहलवाओ तो वो क्या कर सकती है, नानीजी ।

संध्याकी हँसीसे रासमणि जल-भुन गई । बोली—जबरदस्ती करूँ, या न करूँ, सो मैं समझूँगी, लेकिन तेरे बापका यह कैसा चलन है ? कौन-सा भला आदमी अपने मकानमें छोटी जातको बसाता है, सुनूँ ? लोग कहते हैं, जातका दूले । सो इन दूलोंको ही लाकर बाम्हनोंके मुहल्लेमें बसा दिया है । मैं कहती हूँ, घर-जमाई जैसे रहते हैं, वैसे ही रहें तो अच्छा है । ”

पिताके विषयमें इस तरहकी अपमानजनक बात सुनकर मारे क्रोधके संध्याका मुँह सुर्ख हो उठा, उसने भी कठोर होकर जवाब दिया—बाबूजी किसी दूसरेके घर छोटी जात बसाने तो गये नहीं, नानीजी । अच्छा समझा तो अपनी ही जगहमें ठौर दिया है, इससे तुम्हें इतनी जलन क्यों हो गई ?

“ मेरे जलन क्यों हो गई ? क्यों जलन हुई, देखेगी तो ? जाऊँ एक बार चटरजी भइयाके पास ? जाकर कहूँ ? ”

“ हाँ, तो अच्छी बात है, जाकर कह दो न ! बाबूजीने कुछ उनकी जगहमें तो दूले बसाये नहीं हैं,—जो, वे बड़े आदमी हैं,—सर ही काट डालेंगे । ”

“ अच्छा ! जितना बड़ा मुँह नहीं, उतनी बड़ी बात ! अरी वे और कोई नहीं,—स्वयं गोलोक चटरजी हैं ! तेरे बापने शायद अभीतक उन्हें पहचाना नहीं ?—अच्छा—”

शोर-गुल सुनकर जगद्धात्री बाहर निकल आई । उसे देखते ही रासमणि अभिकांडकी तरह प्रज्वलित हो उठी । अपने चीत्कारसे मुहल्ले-भरको चकित करती हुई बोली—सुन जगो, अपनी विद्याधरी लड़कीके भिजाजकी बातें जरा सुन ले ! पढ़ना-लिखना सिखा रही है न ! कहती है, कह दे जाकर अपने गोलोक चटरजीसे,—बाबूजीका वे सर उतरवा लें ! कहती है, अच्छा किया है, अपनी

जगहमें दूले-डोम बसाये हैं;—किसीके बाप दादेकी जगहमें नहीं बसाये,—ऐसे बहुतसे बड़े आदमी देखे हैं; जिससे जो करते बने, कर ले। सुन ले, अपनी लड़कीकी बातें सुन ले !

जगद्धात्रीने विस्मित और कुपित होकर पूछा—कहीं हैं ये सब बातें ?

संध्याने सिर हिलाकर कहा—नहीं, मैंने ऐसे नहीं कहा।

रासमणिने उसीके मुँहपर हाथ हिलाते और गरजते हुए कहा—नहीं कहा ? ये लोग सब गवाह नहीं हैं ?

परन्तु, दूसरे ही क्षण उसने अपने स्वरको अनिर्वचनीय कौशलके साथ ऊँचे सप्तकसे एकदम खादके निखादपर उतार लिया और जगद्धात्रीको सम्बोधित करके कहना शुरू किया—बेटी, मैंने अच्छी ही बात कही थी। मंगलवारके दिन लड़की बकरीकी रस्सी लॉघ गई, इसीसे कहा, और, कौन इस तरह रास्तेपर बकरी बाँध गया भाई ? बस, इतना सुनते ही दूलेकी छुकड़िया दौड़ी आई और बिटियाके मुँहपर घुमाकर आँचल मार ही ता दिया उसने ! बोली, महाराजजीकी जगहमें बकरी बाँधी है, तुम बोलनेवाली कौन ? इसीसे बेटी, तुम्हारी लड़कीको बुलाकर बस इतनी बात कह रही थी कि बिटिया, इतनी अंवरमें इसे नहलाना पड़ेगा, मंगलके दिन बकरीकी रस्सी लॉघ गई,—सो तुम्हारा बाबूजी अगर इन लोगोंको दूले-मुहल्लेसे अपने यहाँ ले ही आये हैं, तो बहन, बकरी-अकरी जरा देख-भालकर बाँधनेके लिए कह देना,—छोटी जातको आचार-विचारका ज्ञान तो होता नहीं,—नहीं तो चटरजी-भइया बूढ़ आदमी ठहरे; इसी रास्तेसे अकसर निकला करते हैं,—फजूलमें गुस्सा हो जायेंगे,—बस बेटी, इतना ही कहा था ! इसीपर तेरी लड़कीने बस मारना-भर बाकी छोड़ा है। कहती है, जा जा अपने चटरजी-भइयाको बुला ला। उसके जैसे बड़े आदमी मैंने बहुत देखे हैं। उसके बापकी ज़मीनपर जब डोम-दूले बसने जायें, तब वो हिमायत लेके आवें। अच्छा, तुम्हीं बताओ तो बेटी, ये क्या लड़कीके कहनेकी बातें हैं ?

जगद्धात्रीने आग-बबूला होकर कहा—कहीं हैं ये सब बातें ?

संध्या अब तक निर्वाक् विस्मयके साथ रासमणिके चेहरेकी तरफ देख रही थी, माकी आवाज़ सुनकर चौंक पड़ी और गरदन फेरकर सिर्फ इतना ही बोली—नहीं।

“ नहीं कहा, तो क्या मौसी झूठ बोल रही हैं ? ”

“ पूछो बेटी, यही बात पूछो अपनी लड़कीसे । ”

संध्याने क्षण-भर मौन रहकर माके प्रश्नका उत्तर दिया—मैं नहीं जानती मा, किसकी बात झूठी है । मगर, तुमने अपनी लड़कीकी अपेक्षा अगर इन मानी-हुई मौसीको ही ज्यादा पहचाना हो तो ऐसा ही सही ।

इतना कहकर वह दूसरे प्रश्नके पहले ही खुले हुए दरवाज़ेसे भीतर चली गई । दोनोंकी दोनों आँखें फाड़कर उस तरफ देखती रह गईं, और मौका समझकर दूलेकी लड़की भी बकरीके बच्चेको छातीसे लगाये चुपचाप वहाँसे खिसक गई ।

रासमणिने कहा—देख लिया न जग्गो, अपनी लड़कीका तेज ! सुन लीं बातें ! कहती है, मानी-हुई मौसी,—कुलीन घरकी लड़की ठहरी, नहीं तो अब तक ब्याह हो गया होता और पाँच-छै बच्चोंकी मा हो जाती । मानी-हुई मौसी,—सुन लिया तो !

जगद्धात्री चुप बनी रही और रासमणि स्वयं भी जरा स्थिर हो ली, फिर सहसा बोल उठी—हाँ, जग्गो, मैंने सुना कि अमरित चकरवरतीके लड़केको तू अब भी घरमें घुसने देती है ? क्या यह सच है ?

जगद्धात्री मन-ही-मन अत्यन्त शंकित हो उठी ।

रासमणि कहने लगी—मैं उस दिन पुलिनकी अम्मासे लड़ ही बैठी । मैंने कहा कि वह जगद्धात्री है और कोई नहीं ! हरिहर बनरजीकी नातिनी और रामतनु बनरजीकी लड़की है,—जो सूदूर होनेके कारण कायथोंके घर तक पैर नहीं धोते थे । भला उनके घर कहीं वह मलेच्छ लड़का घुस सकता है ! तुम लोग कह क्या रही हो !

इस हितैषिणीकी सहानुभूतिके आगे लज्जित होकर जगद्धात्री जरा सूखी हँसी हँसकर बोली—बात तो तुमने ठीक ही कही है मौसी ! पर, तुम तो जानती ही हो, कि बचपनसे ही उसका हमारे यहाँ आना-जाना बना है, मुझे चाची चाची कहा करता है, इसीसे कभी छठे-छमासे अगर आ भी जाता है तो मेरे मुँहसे नहीं नहीं निकलती कि तू मेरे घर न आया कर । बेचारेके मा-बाप कोई नहीं है, देखनेसे दया आ जाती है ।

रासमणि पहले तो सुनकर दंग-सी रह गई, फिर क्रोधके स्वरमें बोली—ऐसी दयाके मुँहपर आग न डाल दे !

अकस्मात् उसका क्रोध बहुत ऊँचा चढ़ गया था, उसके साथ स्वरका सामं-जस्य रखते हुए वह फिर कहने लगी—उस मनघुने लड़केको तू क्या मामूली बदमाश समझती है ? ऐसा पाजी लड़का गाँवमें दूसरा ढूँढ़े न मिलेगा, तुझे बताये देती हूँ । चटरजी भइया ज़मींदार आदमी ठहरे,—उन्होंने खुद छोकरेको बुलवाकर कहा था कि अरुन, वज़ीफेके लोभका गंगाजीमें बहा दो और घरके लड़केकी तरह घर ही बैठो । विलायत मत जाओ । पर, उनकी बात क्या सुनी उसने ? उलटा विलायत जाते बखत उनका मज़ाक उड़ा गया । बोला, यदि विलायत जानेसे जात जाती है, तो जाय, मेरे लिए वही अच्छा । परन्तु, गोलोक चटरजीके समान भेड़-बकरियाँ विलायत भेजकर पैसा पैदा करना मेरा काम नहीं; और न समाजक सिरपर सवार होकर लोगोंकी जात मारना ही मेरा पेशा है । उफ़; मैं अगर उस बखत होती तो मोर झाड़ूके छोकरेका मुँह सीधा कर देती । जो गोलोक चटरजी भात खाकर गोबरसे मुँह-हाथ धोते हैं, उनको जो है सो—

जगद्धात्रीने विनीत कंठसे कहना चाहा—पर अरुन तो कभी किसीकी निन्दा नहीं करता मौसी ?

“ तो क्या मैं झूठ बोल रही हूँ ? और क्या चटरजी भइया— ”

“ नहीं नहीं, वे क्यों झूठ बोलने लगे । पर लोग भी तो बहुत-सी बातें बनाकर कह आते हैं । ”

“ तेरी तो बस एक ही बात है जग्गो ! लोगोंको खा-पीकर कुछ काम थोड़े ही है जो गये होंगे बात बनाकर कहने;—अच्छा, विलायत जाकर ही कौन-सी दिगबिजै कर लाया बता ? सीख आया किसानोंकी विद्या । सुनकर हँसी आती है । चकरवरती हो और चाहे जो हो, है तो बाम्हनका ही लड़का ! देसमें क्या किसान थे नहीं ? अब कोई पूछे उससे, क्या तू हल जोतने जायगा खेतोंमें ? हूँ; मौत भी न आई ! ”

रासमणिके कंठस्वरका तीव्र सौरभ क्रमशः व्याप्त होनेकी तैयारी कर रहा था, गन्ध पाकर कहीं मुहल्लेकी समझदार मधुमक्खियोंका झुंड न आ पहुँचे, इस डरसे जगद्धात्रीने धीरेसे कहा—खड़ी खड़ी क्यों बतला रही हो मौसी, चलो जरा, भीतर चलकर बैठो न ।

“ नहीं नहीं, बहुत अबर हो गई है, अब बैठूंगी नहीं। बिटियाको भी नहलाना है। दूलेकी छुकड़िया भाग गई न ? ”

“ हाँ दादी, तुम जब बातें कर रहीं थीं, तभी चली गई। पर उसने मुझे छुआ नहीं— ”

“ फिर ‘ नहीं ’ कह रही है हरामज़ादी।—पर जग्गो, तुझसे विनती करती हूँ बेटी, मुहल्लेमें दूले-बाग्दी मत बसा। जमाईसे भी कहना। ”

“ कहूँगी क्यों नहीं मौसी, मैं कल ही इन लोगोंका निकाल बाहर करूँगी। और, रहेंगे तो अपने ही लिए दिक्कत है, तालाब-घाट बिगाड़ेंगे, उनके डाले हुए पानीके ऊपरसे अपनहीको तो चलना-फिरना पड़ेगा। ”

“ तू ही बता बेटी, फिर हम लोगोंका जात-जनम बना रहेगा ? मैं तो यही बात कह रही थी, पर आजकलके लड़के-लड़कियाँ कुछ मानना थोड़े ही चाहते हैं। इसीसे तो चटरजी भइया उस दिन सुनकर दंग रह गये, बोले, राबू, अपनी जगद्धात्रीकी लड़कीको, सुना है कि, उसका बाप पढ़ा-लिखा रहा है ? ये लोग कर क्या रहे हैं ! मना कर दे,—मना कर दे,—लड़कीकी जात पढ़-लिखकर एकदम मिट्टीमें मिल जायगी। ”

जगद्धात्रीके डरकी सीमा न रही; बोली,—“ चटरजी मामा कह रहे होंगे ? ”

“ कहेंगे नहीं ? वे ठहरे समाजके सिर, गाँवके एक ज़मीनदार। उनके कानों तक कौन-सी बात नहीं पहुँचती, बता ? अरे मुझ ही ले न,—बूढ़ी तो हाँ चली,—लिखने-पढ़नेकी कोई बला ही नहीं जानती, पर कौन-सा सास्तर मैं नहीं जानती बता ? किसीके बापकी मजाल है जो कह दे कि रासी-बाम्हनीने कोई असास्तरी काम किया है ! लहलीकं बकरीकी रस्सी लाँघते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये, उस बखत मैंने कहा, ‘ अरी छुकड़िया तूने किया क्या यह, मंगलके दिन लाँघ गई ! ’ कोई कहे तो देखूँ, कौन-सा पंडित कहता है कि नहीं, इसमें दोस नहीं है। सो नहीं हाँ सकता बेटी,—सो हाँ ही नहीं सकता। हम लोगोंने बाप-महतारीसे सिच्छा पाई है। मगर, बुला तो जरा अपनी पढ़ी-लिखी लड़कीको, देखूँ, कैसे बताती है ये सब बातें ! ”

जगद्धात्रीने चुपचाप उसकी बात मान ली, बोली—जरा बैठकर जातीं न मौसी।

“ नहीं, बेटी, अबर हो गई है, और किसी दिन आऊँगी। चल खेदी, घर चल। ”

इतना कहकर नातिनोको आगे लेकर कुछ ही कदम चली होगी कि फिर लौट पड़ी, बोली—क्यों जग्गो, ऐसा अच्छा पात्र हाथसे क्यों निकल जाने दिया, बता तो सही ?

“ नहीं तो, हाथसे तो नहीं निकलने दिया, पर एक बात है, घर-द्वार कुछ नहीं है, उमर भी ज्यादा है,—तुम्हारे जमाईके बराबर होगा, क्यों मौसी ?

रासमणि आश्चर्यसे चकित होकर खड़ी हो गई, बोली—सुनो इसकी बातें ! मैं पूछती हूँ, उसके घर नहीं तो तेरे तो है ! तेरे कोई लड़का तो है ही नहीं, और लड़की भी दूसरी नहीं, जिसके लिए चिन्ता हो । एक लड़की है, उसी लड़की और जमाईको लेकर घर चलाती, यह क्या कम आनन्दकी बात होती बेटी ! और उमर ? कुलीन-घरानेके लड़केकी चालीस-ब्यालीसकी उमर क्या कोई उमरम सुमार है ! रसिकपुरके जयराम मुखरजीका दोहता है दोहता ! उसकी उमर कौन देखता है जग्गो ? इसके सिवा अपनी लड़कीकी उमरकी तरफ भी तो देख जरा ! और भी गरियारी करंगी, तो फिर ब्याहेगी कब ? अन्तमें क्या अपनी छोटी बुआकी तरह ज़िन्दगी-भर कुआँरी रख छोड़ेगी ?

जगद्धात्रीने शरमाते हुए कहा—मैं भी यही कहती हूँ मौसी, पर लड़कीके बाप तो बिलकुल ही—

रासमणिको इतना भी धीरज न रहा कि उसकी बात भी पूरी हो जाने देती । जल-भुनकर कह उठी—लड़कीका बाप क्यों न कहेगा भला ! उसके खदके कितने घर-द्वार और ज़मीनदारी थी ! बात सुनके हँसी आती है । इसके सिवा, अरुनकी बैठकमें दिन-रात बैठना-उठना, गाना-बजाना, सुनती हूँ हुक्का तक चल रहा है,—सो ऐसी बात वह न कहेगा तो क्या चटरजी-भइया कहेंगे ? हद्द कर दी जग्गो ! पर एक बात कहे देती हूँ, बेटी, घर-वर जब मिल गया है तब ना-ना करके देर करंगी तो अन्तमें फिर वही कोरिया-वाला किस्सा हांगा,—अतिका लोभी ठगाया जाता है । तेरी छोटी बुआ गुलानी बूढ़ी क्वॉरी रहकर मरी, तेरे बापकी बड़ी और मझली दोनों बुआओंका ब्याह ही नहीं हुआ । और तेरा ही क्या समयपर ब्याह हो जाता बेटी, अगर तेरे बाप-मा काशीजी जाकर न रहने लगते ? समधिन काशी-वास कर रही थीं, आगे-पीछे कोई झंझट था नहीं, जमाई इस्कूलमें पढ़ता था,—घर-वर ज्यों ही मिला, चटसे तुम दोनोंके पीले हाथ कर दिये और लड़की-जमाई लेकर गाँवके लोग गाँव लौट आये । कोई भौंजी

न मार दे, इस डरसे किसीको खबर तक नहीं दी! सो अच्छा ही किया था, नहीं तो ब्याह होता कि नहीं, कौन जानता है?—चल खेंदी, चल।—जयराम मुखरजीका नाती,—वह भी काला और धौला! दिनपर दिन कितनी न अनोखी बातें सुननी पड़ेंगी!—ले चल बिटिया, अब और देर मत कर। कपड़े-अपड़े धोते करते, दिआ-बत्ती जलाके माला जपते-जपते आज, देखती हूँ, पहर रात बीत जायगी। मगर एक बात मैं जरूर कहूँगी जगो, खिस्तान-फिस्तानको घरमें घुसने देना, लड़कीके साथ हँसी-मस्करी करने देना, अच्छा नहीं। बात फैल जानसे लड़का भिलना मुस्किल हो जायगा बेटी,—खेंदी चलती क्यों नहीं, चल न।—पराई बात कोई छिड़नी चाहिए, फिर तो हिलना ही नहीं चाहती!

बड़बड़ाती हुई रासमणि नातिनीको आगे आगे लिये वहाँसे प्रस्थान कर रही थी, और जगद्धात्री शंकित और सूखे मुँहसे उसकी तरफ खड़ी देख रही थी; इतनेमें सहसा चौँककर जगद्धात्रीने कहा—ओ बिटिया खेंदी, जरा खड़ी रहना, खेतसे कल टोकनी-भर नये मारू बैंगन आये हैं, और एक कच्ची लौकी आई है, उनमेंसे कुछ लेती जा तो बिटिया,—मैं चट्स लिये आती हूँ,—

इतना कहकर जगद्धात्री जल्दीसे भीतर जान लगी, रासमणि पुलकित विस्मय-के साथ बोल उठी—अच्छा! बैंगन अभीसे लगने लगें?

कहकर आवाज़को जरा धीमी करके नातिनीसे बोली—अरी खेंदी, मुँहजली, ठूँठकी तरह खड़ी ही है, साथ-साथ जाती क्यों नहीं!

और दूसरे ही क्षण उसे पीछेसे पुकारकर कह दिया—दौड़ी आना,—मैं तबतक आगे बढ़ती हूँ।



## २

संध्या सामनेके दालानमें बैठी एकाग्र चित्तसे कुछ सीं रही थी, जगद्धात्री पाठ-जप करके ठाकुरजीके घरसे बाहर आ रही थी, कुछ देर तक लड़कीकी ओर एकटक देखकर उसने कहा—सबरेसे इतना क्या सीं रही है संध्या? दोपहर दिन चढ़ गया,—नहायेगी-खायेगी नहीं? परसों तो पथ्य लिया है, फिर पित्त चढ़कर बीमार पड़ जायगी, कहे देती हूँ।

संध्याने बढ़ती सूतको दाँतसे कुतरते हुए कहा—बाबूजी तो अभी तक आये नहीं, मा ।

“ सो मालूम है । बिना-पैसेका इलाज करते-करते कितना दिन चढ़ जायगा, सो नहीं मालूम । खैर, मैं तो हूँ, तुझे उपासे रहनेकी क्या ज़रूरत है ?

संध्या चुपचाप काम करने लगी, कुछ जवाब नहीं दिया ।

माने पूछा—क्या, सीं क्या रही है, सुनूँ तो सही ?

लड़कीने बिना इच्छाके अस्पष्ट स्वरमें जवाब दिया—दो बटन टाँके देती हूँ ।

“ सो तो जानती हूँ बेटी, जानती हूँ । और नहीं, क्या मैं अपनी धोतीके लिए थोड़े ही पूछ रही हूँ कि सीईं कि नहीं । किन्तु, कैसी बाप-सुहागिन बनी है तू, मानो दुनियामें और किसीके बाप ही न हों । कहाँ किस कुड़तेमें बटन नहीं हैं, कहाँ कौन-सी धोतीके छोरमें खौंता लग गया है, किस कमीजमें जरा-सा दाग लग गया है, जूतेकी कहाँ जरा-सी सिलाई खुल गई है,—इसी काममें तो दिन-रात जुटी रहती है, इसके सिवा संसारमें और कोई काम करनेको नहीं है तुझे ?

संध्याने मुँह उठाकर जरा मुसकराते हुए कहा—बाबूजीकी तो इन सब बातोंपर निगाह ही नहीं पड़ती मा ।

जवाब सुनकर मा खुश न हुई, बोली—पड़ेगी कैसे ? बिना-पैसेकी डाक्टरीसे बखत मिले तब तो ! मैं पूछती हूँ, दूलेकी लुगाई-लड़की गई ?

“ जायगी क्यों नहीं मा । ”

“ आखिर कब ? छू-छाकर जात-जनम बिगड़ जायगा, तब ? फिर सुई पिरो रही है जो ? उटेगी नहीं क्या ? ”

“ तुम जाओ न मा, मैं अभी आती हूँ । ”

“ इस बीमारीकी देहमें तुझे जो दिखाय सो कर बेटी,—तुम दोनोंसे बकते-झकते मेरा माथा गरम हो गया । घर-गिरस्तीकी अब मुझे ज़रूरत नहीं है,—अब मैं सासके पास जाकर काशी-वास करूँगी,—सो तुम लोगोंसे माफ साफ कहे देती हूँ । ”

इतना कहकर गुस्सेमें भरी जगद्धात्री पीतलका कलसा लेकर पिछेके तालाबकी ओर जल्दीसे चली गई ।

संध्या नीचेको निगाह किये हुए ही जरा मुसकराकर रह गई, माकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया । उसकी सिलाई लगभग खतम हो चुकी थी, सुइ-डारा

आदि फिलहाल एक छोटेसे साबुनके बाक्समें रखकर उठना ही चाहती थी, इतनेमें पिताके शोर-गुलसे चौंककर उसने मुँह उठाया। वे हमेशा व्यस्त रहते हैं, तुरंत ही घरमें पैर रखा है, हाथमें एक होमियोपैथी दवाओंका छोटा-सा बाक्स और बगलमें कई डाक्टरी किताबें दबी हुई हैं। लड़कीको देखते ही कह उठे—संध्या, उठ तो बेटी, चटस मेरा दवाका बड़ा बाक्स जरा,—क्या करूँ क्या नहीं, कुछ समझमें नहीं आता,—ऐसी मुसीबतमें जान—

संध्याने झटपट उठकर पिताके हाथसे बाक्स और किताबें लेकर एक तरफ रख दीं; बरामदेमें इससे पहलं जा चटाई बिछा रखी थी, हाथ पकड़पर पिताको उसपर बिठा दिया और पंखांस हवा करते करते कहा, “आज तुम्हें इतनी देर क्यों हो गई बाबूजी?”

“देर ! मुझे क्या नहाने-खानेकी फुरसत है, तुम लॉग समझती हो ? जिस किसी रंगीके पास न जाऊँ, वही रूठ जाता है। प्रिय मुखर्जीके हाथकी एक बूँद दवा बिना लिये जैसे कोई बचेगा ही नहीं। डर बिलकुल झूठा ही हो, सो बात तो नहीं कह सकता, पर प्रिय मुखर्जी तो एक ही है,—दां तो नहीं हैं ! उनसे कहता हूँ,—नन्द मित्तिर आखिर प्रैक्टिस तो कुछ-न-कुछ कर ही रहा है,—दो-चार दवा न जानता हो, सो भी नहीं,—मगर सो नहीं होनेका, मुखर्जीके बिना काम ही नहीं चलगा ! और उनसे भी क्या कहूँ ! एक दवाका भी सिम्टम कोई याद करता हो तो ! अरं, इतनी सहज धिया नहीं है,—इतनी सहज नहीं है ! तब तो फिर सभी-काई डाक्टर हो जाते ! सभी प्रिय मुखर्जी हो जाते !”

“बाबूजी, कोट-कमीज़ उतार डालो न—”

“उतारता हूँ, बेटी। यही आजहीकी बात है,—दन्नस पेटने पॅल्सेटिला दे डाला, प्रैक्टिस तो करत हो, मगर बताना जरा उसका ऐक्शन (शरीरपर असर) क्या होगा ? देखूँ, मेरी तरह कंठस्थ सब कह तो जाय, कैसे कहता है ! संध्या, खाल तो बेटी, किताब जरा, पॅल्सेटिला×—”

“किताबका क्या करोगे बाबूजी ! आज खान-पीनेके बाद उसी दवाके बारेमें तुमसे पढ़ लूँगी न। पढ़ा दांग, बाबूजी ?”

“पढ़ा क्यों नहीं दूँगा, जरूर पढ़ा दूँगा। नॅक्सबोमिकाके साथ फर्क असलमें,—उस किताबको जरा उठा तो ला—”

---

× होमियोपैथीकी एक ओषधि।

“ तब तक तुम्हारे तेल लगा दूँ न बाबूजी । बड़ी अबेर हो गई है,—मा आकर गुस्सा होंगी फिर । ” कहते हुए संध्याने एक बार उद्विग्न दृष्टिसे देख लिया, उसकी मा नहाकर लौट रही है या नहीं; और मना करनेसे पहले ही वह प्यालीसे थोड़ा-सा तेल लेकर पिताके पैरोंमें मलने लगी ।

“ अंर,—जरा ठहर क्यों नहीं गई बिटिया । जरा देख लेंता—”

“ आज किस-किसको देखा बाबूजी ? अच्छा, पंचा मल्लाहके बाबाको—”

“ वह बुढ़ा ? वह तो मरेगा, जरूर मरेगा, तू देख लेना, संध्या । और वह परान चटर्जी,—उस हरामजादेपर मैं कैसे करूँगा तब छोड़ूँगा । जिस रोगीको मैं देख आता हूँ, उसीको जाकर बहका आता है ! एक दिनसे ज्यादा कोई मेरी दवा खाना ही नहीं चाहता, सो क्यों ?—सिर्फ उस नालायक पाजी गंधे लुच्चेकी वजहसे ! क्या किया है उसने, जानती है ? पंचाके बाबाको ज्यों ही मैं एक रेमेडी सिलेक्ट ( औषध चुनकर ) करके दे आया, त्यों ही चटसे पीछे-पीछे पहुँचा और बोला, क्या है देखूँ, क्या दिया है ?—”

संध्याने क्रोधके स्वरमें कहा—फिर ?

पिताने उससे भी अधिक क्रोधके साथ कहा—साला बदमाश, गटगट करके सारी शीशी पी गया और बोला, ‘खाक दवा है ! लो मैं सब पी गया । भला, मेरी दवा तो वह पी जाय, कैसे पीता है देखूँ !’ यह कहकर एक शीशी कैथर-ऑइल ( एरंडीका तेल )की दे आया । वे कहने लगे, महाराज, आपकी दवा तो वे एक ही धूँटमें पी गये, उनकी दवा आप पी सकें तो हम आपकी दवा पीयेंगे, नहीं तो नहीं । X

संध्याने डरसे व्याकुल होकर कहा—उसे तुमने पीया तो नहीं बाबूजी ?

“ नहीं,—सो क्यों पीने लगा ! मगर इतनी अबेर तक घर-घर घूम आया, एक भी रोगी न जुटा सका ! परानके नाम मैं जरूर कैसे करूँगा, तुझसे कहे देता हूँ संध्या ! ”

क्षोभ और अभिमानसे संध्याकी आँखोंमें आँसू छलछला आये । अपने इस निरीह पिताको दुनियाके सब तरहके आघात-उपद्रव और उपहास-परिहासोंसे बचानेके लिए मानो वह अपने दस हाथोंको बढ़ाकर ओटमें कर लेना चाहती है । सजल-कंठसे बोली—बाबूजी, तुम दूसरोंके लिए ऐसे घाममें क्यों घूमा करते हो ? घरपर ही कितने ही लोग तुम्हारी दवाके लिए आ-आकर लौट गये ।

X होमियोपैथी दवा कितनी ही अधिक या कम मात्रामें क्यों नहीं खाई जाय एक-सा असर करती है तथा यदि लाभ न पहुँचाय तो नुकसान भी नहीं पहुँचाती ।

इस बातमें सत्यका कुछ अपलाप था। गाँवके गरीब-दुःखी लोग दवा लेने आते जरूर हैं, पर वे संध्याके पास आते हैं, उसके पिताके पास नहीं। पितासे ही संध्याने छोटी-मोटी बीमारियोंका इलाज करना सीखा है, और उसकी दी हुई दवा प्रायः निष्फल भी नहीं जाती। परन्तु, गुरुसे लोग यमकी तरह डरते हैं। इसीसे वे सावधानीसे इस बातका पता लगाकर कि मुखर्जी डाक्टर घरपर नहीं हैं, घरपर दवाके लिए पहुँचते हैं। संध्या भी इस बातको जानती है; परन्तु, बाबूजीके लिए झूठ बोलनेमें उसे हिचक नहीं है।

परन्तु, पिता एक बारगी चंचल हो उठे, कहने लगे—लौट गये? कौन कौन? कौन कौन आये थे? कितनी देर हुई गये? किस रास्ते गये हैं? नाम-वाम सब पूछ-पाछ लिया है न?

संध्या मन-ही-मन अत्यन्त लज्जित होकर बोली—नाम-वाम पूछनेकी मुझे क्या जरूरत बाबूजी, वे आप ही आयेंगे फिर।

“ओः, तुम लोगोंके मोरे परंशान हो गया मैं तो! नाम पूछनेमें क्या हो गया था? अभी ही चटसे घूम आ सकता था। देर होनेसे बीमारी बिगड़ भी तो सकती है,—कुछ कहा नहीं जा सकता,—अभी एक ही बूँदमें अच्छा कर देता।”

संध्या चुपचाप तेल मलने लगी, कुछ बोली नहीं।

पिताने फिर पूछा—कब आयेंगे, कुछ कह गये हैं?

“शामको शायद—”

“शायद! देखो, कैसी गलती हो गई! मान लो, अगर किसी कदर न आ सके तो? और क्यों री संध्या, बिपनके हाथ तो नहीं पड़ गये? परान हुराम-जादा तो इसी टोहमें रहता है, उसे तो खबर नहीं लग गई? नहीं भइया, अब मुझसे नहीं सहा जाता। घरमें क्या मुट्ठेभर चने-चूड़ भी न थ? जरा जरा देकर घंटे-भर बैठान न रख सकी? जिस बातको बता न दूँगा, जिसे न देखूँगा,—कौन? कौन है? कौन झाँक रहा है भई? चल आओ न भीतर। अंर, राममय हो! लँगड़ा क्यों रहे हो?

उनके सादर आह्वान और कल-कंठका सुनकर एक किसान-सा अंधड़ उमरका आदमी आँगनमें आकर खड़ा हो गया और बिलकुल निस्पृह स्वरसे बोला—जी, नहीं, यह कुछ नहीं—

“कुछ नहीं? अजीब बात है! साफ लँगड़ा रहे हो, और कहते हो कुछ

नहीं।—अः—तेल मलना जरा बंद कर दे संध्या!—कुछ नहीं? साफ आरनिका केस देख रहा हूँ,—नहीं नहीं, मज़ाक नहीं राममय, कहाँ, देखू तो जरा पैर?”

पैर दिखानेके प्रस्तावपर राममयने एक बार करुण दृष्टिसे संध्याके मुँहकी ओर देखकर कहा—जी हाँ, पाँवमें जरा मोच आ जानेसे कल गिर गया था।

प्रिय बाबू अपनी लड़कीकी तरफ देखकर जरा हँसकर बोले—देख लिया न संध्या, देखते ही मैंने कह दिया था न कि आरनिका है। हम लोग देखते ही समझ जाते हैं। हूँ, गिरे कैसे?

“जी, कहा न मैंने पाँवमें मोच आ गई थी। दरवाजेके पास ही एक पानीका पनाला है, उसके ऊपरका तख्ता लड़कोंने न जाने कहाँ गायब कर दिया, अनमना-सा मैं—”

“अनमना? ऐगनिस्—एपिस!—संध्या, बेटी, याद रखना, स्वभाव ही असली चीज़ है। महात्मा हेरिंगने कहा है,—हूँ, अन्यमनस्क होकर—फिर?”

“ज्यों ही पाँव रखा कि मुँड़कर गिर—”

“ठहरो, ठहरो! अभी तो तुम कह रहे थे, मोच आ गई थी! मोच आना और मुड़ जाना दोनों एक नहीं है राम!”

“जी, नहीं। सो तो पाँवमें मोच आनेसे ही गिर पड़ा था।”

“हूँ,—अन्यमनस्क! याद नहीं रहती! तुरंत कहते हो, तुरंत भूल जाते हो। ऐगनिस्—एपिस! हूँ,—फिर क्या हुआ?”

“फिर और क्या होता महाराजजी, कलसे मारे दर्दके जमीनपर पैर नहीं रखा जाता।”

यह कहकर उसने उत्सुक दृष्टिसे एक बार संध्याके मुँहकी ओर देखकर एक गहरी साँस ली।

संध्याने जल्दीसे कहा—बाबूजी, अंबर हुई जा रही है, जरा-सी आरनिका—

“ऊँह—ठहर जा संध्या। केसको जरा स्टडी तो कर लेने दे। सिमिलिया सिमिलिबॉस्! रेमिडी सिलेक्ट करना कोई लड़कोंका खेल थोड़ा ही है! बदनाम हो जाऊँगा! हूँ, उसके बाद? दर्द कैसा होता है, बताओ राममय?”

“जी, बड़े जोरका दर्द है महाराजजी!”

“अह-ह, सो नहीं पूछता! किस ढंगका दर्द है? कोई चीज़ घिसने-जैसा

या मलन-जैसा ? सुई चुभने-जैसा या बिच्छू डसने-जैसा ? कुनकुन करता है या झनझना रहा है ? ”

“ जी हाँ, महाराजजी, ठीक ऐसा ही । ”

“ तो झन-झन करता है ! ठीक है । उसके बाद ? ”

“ उसके बाद और क्या होगा महाराजजी, कलसे दर्दके मोरे मरा जाता हूँ ।— ”

“ ठहरो, ठहरो ! क्या कहा ? मेरे जाते हो ? ”

राममय अधीर हो उठा था, बोला—और नहीं तो क्या डाक्टर साहब ! लँगड़ाकर चलता हूँ, पाँव धरा नहीं जाता,—यह मरना नहीं तो और क्या है ! इसके सिवा लड़के ऐसे बदमाश हैं कि बात नहीं सुनते, मना करनेपर मानते नहीं,—उस तर्ज़से ही उनका खेल होता है । फिर किसी दिन अँधेरे-उजियारेमें गिर मरूँगा मालूम होता है । जो हो, कोई दवा दीजिए, बहुत अँबेर हुई जा रही है । ”

“ बाबूजी, आरनिका दो बूँद— ”

प्रिय बाबू लड़कीकी तरफ देखकर जरा हँसे, बोले—नहीं बेटी, नहीं । यह आरनिकाका केस नहीं है । बिपन होता तो यही दे देता ! चार बूँद एकोनाइट तीस शक्ति ! दो-दो घंटे बाद पीना । ”

संध्याने दोनों आँखें फाड़कर कहा—एकोनाइट, बाबूजी ?

“ हाँ बेटी, हाँ । मरनेका डर है मरनेका ! गिर मरूँगा । सिभिलिया सिभिलिबॉस क्युरेन्टर ! महात्मा हेरिंगने कहा है, रोगका नहीं, रोगीका इलाज करना चाहिए । मृत्यु-भयमें एकोनाइट मुख्य दवा है । बिपन होता,—हूँ,—फिर भी, फिर भी हरामज़ादा इलाज करने आता है ! राममय, शीशी लेकर जाओ मेरी लड़कीके साथ । दो-दो घंटे बाद चार बार पीना । उस छाक जाकर देख आऊँगा । हाँ, सुनो, परान आकर अगर कहे कि लाओ देखें, क्या दिया ? तो खबरदार, शीशी मत निकालना, कहे देता हूँ । हरामज़ादा गट-गट सब पी जायगा और फिर कैष्टर-ऑइल रख जायगा ! उह,—पेटमें मरोड़ा-सा हो रहा है । ”

राममयको दवा देनेके लिए संध्या खड़ी हो गई थी, भय-व्याकुल कंठसे पूछ उठी,—कैष्टर ऑइल सब-का-सब तो नहीं पी आये, बाबूजी ?

“ नहीं तो,—उह,—लोटा दे, कहाँ है ? ”

“ तो मालूम होता है तुमने— ”

“ नहीं—नहीं—नहीं—दे न जल्दी लोटा ! इस जले घरमें अगर कोई भी चीज़ मिल जाय वक्तपर ! तो रहने दे लोटा—” कहते कहते ही प्रिय बाबू बड़ी तेजीसे पिछवाड़ेके दरवाज़ेस बाहर चले गये ।

राममयने कहा—जीजी देवी दवा दे देतीं—

संध्या चौक पड़ी, बोली—दवा ? हाँ-हाँ, अभी लाय देती हूँ ।

“ अभी जो तुमने बताया थी ‘ आरनी ’ न क्या, उसीकी दो बूँद दे दो जीजी । मुखर्जी बाबूकी दवा अभी—

संध्याने हृदयमें व्यथित होकर कहा—मैं क्या बाबूजीसे ज़्यादा जानती हूँ, राममय ?

राममयने लजित होकर कहा—नहीं,—सो नहीं कह रहा,—पर मुखर्जी बाबूकी दवा बड़ी तेज़ होती है न जीजी,—मैं कमज़ार आदमी ठहरा,—बल्कि, जाते ही, न हो तो मैं साँतोंके माधोका बहला-बुहुलूकर भेज दूँगा,—कलसे उसे दस्त हो रहे हैं,—बाबूजीकी दवा खाते ही वह अच्छा हो जायगा,—मुझे वही अपनी-वाली ही दवा आज दे दो, फिर देखा जायगा ।

संध्याने विपाद-भरे स्वरमें कहा—अच्छा, आओ इधर ।

यह कहकर वह राममयको अपने साथ बरामदेमें होकर बगलवाले कमरेमें ले गई ।

जगद्धात्री ठाकुरद्वारेके लिए पानीका घड़ा भरने तालाब गई थी, घरमें घुसते ही उसने भरे घड़ेका धप-से बरामदेमें रखकर क्रोध-भरे स्वरमें पुकारा—संध्या ?

संध्याने कमरेके भीतरसे ही जवाब दिया—आती हूँ मा ।

माने कहा—तब बाबू अभी लौटे नहीं न ? तो फिर आज ठाकुरजीकी पूजा बन्द रहेगी ?

लड़कीने बाहर आकर कहा—बाबूजी तो बहुत देरके आ गये हैं, मा । तेल लगाके नहाने गये हैं ।

“ कहाँ, तलाबपर तो नहीं देखा ? ”

वे दौड़े दौड़े कहाँ गये थे, संध्या इस बातको जानती थी । जरा देर चुप रहकर बोली—तो शायद आज नदी नहाने चले गये होंगे । बहुत देर हुई,—आते ही होंगे अब ।

जगद्धात्री जरा भी शान्त न हुई, बल्कि, अधिकतर गरम गलेसे कहने लगी—इनको लेकर अब तो मुझसे नहीं रहा जाता। संध्या, या तो वे ही कहीं चले जायँ, या फिर मैं ही कहीं चली जाऊँ। बार बार कह दिया था कि पुजारीजी न आ सकेंगे, आज जरा सिदौसे आना। फिर भी इतनी अंबर,—ठाकुरजीके सिरपर जरा-सा पानी तक न पड़ा,—इसके सिवा कल क्या कर आये हैं, जानती है ?—बिराट नाईको ब्याजके सब रुपये माफ करके चुकता रसीद दे आये हैं।

संध्याने आशंकासे परिपूर्ण हाँकर कहा—किसने कहा, मा ?

“क्यों, बिराटकी खुद अपनी बहन ही कह गई है। भौजाईको लेकर तलाबपर नहाने आई थी।”

संध्याने जरा हँसनेकी कांशिश की—भाई-बहनमें उनमें झगड़ा चल रहा है मा, शायद झूठे ही कह दिया होगा।

माने नाराज हाँकर कहा—क्यों तू सब बातें ढकनेकी कांशिश करती है संध्या, बता तो ? बुखारका नाम लेकर बिराट नाई बुला ले गया यहाँसे, वहाँ जाकर दवा पीई, धन्वन्तरी कहकर पैरोंकी धूल ली, ज़मींदार कहकर,—गौरी-सेनके बराबर बताकर,—फुलाकर, कुप्पा कर दिया,—वे कहते जाते और हँसते-हँसते लोटपाट होते जाते ! बस, फिर क्या देखना था ! रुपये जाने दिये,—पर मनमें तो ऐसी आई कि अब घर न लौटूँ,—इस गागरका ही गलेसे बाँधकर डूब मरूँ तलाबमें। आजकल तो बहुत ही ज्यादाती करने लगे हैं, संध्या, मैं घरगिरस्ती चलाऊँ कैसे, बता तो सही ?

“कितने रुपये थे मा ?”

“कितने ? दस-बारहसे कम न होंगे, मैं कहती हूँ न। मुट्ठी-भर रुपये जो हैं सो यों ही—”

बात उसकी खतम भी न हो पाई कि इतनमें प्रिय बाबू भीगी धाँती पहने आ पहुँच और कामकी जल्दी दिखलाते हुए चिल्लाकर कहने लगे—संध्या, अँगौछा—अँगौछा—अँगौछा दे,—जल्दीसे दे बिटिया। एकोनाइट तीस शक्ति,—बाक्सके एकदम कोनकी तरफ—”

जगद्धात्री आगकी तरह भकसे जल उठी, बोली—एकोनाइट तुम्हारी मैं निकालती हूँ, ठहरो ! ससुरके अन्नपर ज़मींदार बननेमें शरम नहीं आती तुम्हें ? किसने कहा तुमसे बिराट नाईको सूद छोड़ देनेके लिए ? किसकी जगहपर तुमने

दूले-डोम लाकर बसाये हैं ? किसकी ज़मीन तुम गोचर करके दान कर आते हो ? हमेशासे तुमने मेरा हाड़-माँस जलाया है और जलाओगे ! आज या तो मैं चली जाती हूँ कहीं, नहीं तो, तुम मेरे घरसे निकल जाओ !

संध्याने तीव्र-कंठसे कहा—मा, दांपहरको यह सब तुमने क्या शुरू कर दिया, बताओ तो ?

माने उसी तरह जवाब दिया—इसमें अब दुपहर और सबेरा क्या है ? कौन हैं वो ? ठाकुरजीकी पूजा करके चूल्हेकी खाक-धूल जो मिले सो निगलकर चले जायँ यहाँसे । मैंने बहुत सहा है, अब नहीं सहा जाता, नहीं सह सकती मैं,—नहीं सह सकती !

कहते-कहते ही वह अकस्मात् रो पड़ी और जल्दीसे अपने कमरेमें चली गई ।

प्रिय बाबूने, ‘ हूँ : ’—कहकर, एक गहरी उसास ली, और फिर कहना शुरू किया—मैंने बहुत कहा, जर्मींदार हूँ तो क्या इतने रुपये सूदके छांड़े जा सकते हैं बिराट ? तुम लोग क्या कह रहे हो ? मगर वहाँ कौन किसकी सुनता है ? और उनको भी क्या दांप दूँ ! दवा पीनेका है तो पथ्यका टिकाना नहीं ! नेट्राम दो सौ पावर एक बूँद देकर—

संध्याकी दोनों आँखोंमें आँसू छलक रहे थे, उसने चुपकेसे उन्हें पोंछकर कहा—बाबूजी, तुम माका बिना जतलाये इन सब झंझटोंमें पड़ा क्यों करते हो ?

“ मैं तो कहता हूँ, नहीं पढ़ूँगा,—पर प्रियनाथके वगैर गाँवमें कोई काम होता भी तो नहीं, यह भी देखता हूँ ! किसका कहाँ बीमारी हुई, किसका कहाँ—”

बात पूरी करने भी न दी कि संध्या चली गई, और उसी वक्त सूखी धोती और अँगौछा लाकर पिताके हाथमें देते हुए बोली—अब और देर मत करो बाबूजी, ठाकुरजीकी पूजा कर डालो । मैं आ रही हूँ ।

इतना कहकर वह अपने कमरेमें चली गई, और प्रिय बाबू भी सिर पोंछते पोंछते शायद ठाकुर-द्वारेकी तरफ चल दिये । कहते गये, “ उह,—फिर पेटमें ऐंठन होने लगी ! परानके नाम—उह—”



## ३

उस दिन रासमणि जिन गोलोक चटर्जीकी यह तारीफ सुना कर,—कि, उनके डरसे शर-बकरी एक घाट पानी पीत हैं, संध्याको बार-बार डरा गई थी, वही हिन्दू-कुल-चूड़ामणि प्रबल पराक्रमी महाशय अपनी बैठकमें अभी तुरन्त आकर बैठे हैं। उनके पट्टवस्त्र और चांटीमें बंध ताजे करवी-पुष्पको देखकर यही मालूम होता है कि अभी हाल ही वे प्रातःकालीन पूजा-पाठ समाप्त करके चले आ रहे हैं। नौकर फरशीपर भरी हुई चिलम रखकर उनके हाथमें नल थमा गया है, मालिक साहब सुडौल तोंदको तकियेके सहारे रखकर अन्यमनस्क भावसे उसे पीनेकी तैयारी कर रहे हैं, इतनेमें भीतरवाला दरवाजा हिल उठा और उसके शब्दसँ आँख उठाकर वे बोले—कौन ?

ओटमेंसे आवाज़ आई—मैं हूँ। बिना कुछ खांय-पींय ही चले जा आये बाहर, बात क्या है ? गुस्सा हाँ गंय क्या ?

गोलोकन कहा—गुस्सा ? नहीं तो, गुस्सा और अभिमान अब किसपर करूँगा बताओ ? वे बातें तो तुम्हारी जीजीक साथ साथ ही चली गईं।

इतना कहकर एक गहरी उसास ली, और फिर कहा, “नहीं, अभी और कुछ नहीं खाऊँगा। आज गोकुल भगवानके तिरांभावका दिन है,—अब शामके बाद ही एकदम संध्या-पूजा करके जरा-सा दूध-गंगाजल मुँहमें डाल लूँगा। इसी तरह जितने दिन कट जाँय अच्छे ही हैं।” यह कहकर फिर एक गहरी साँस ली और हुक्ककी नली मुँहमें लगा ली।

जो स्त्री नेपथ्यसँ बात कर रही थी, उसने दरवाजेको जरा-सा खोलकर देख लिया कि कमरेमें और कोई नहीं है; और फिर, वह फिर भीतर आ गई। वह विधवा है। देखनेमें बुरी नहीं है, और उमर भी शायद चौबीस-पच्चीसके भीतर ही होगी। महीन सफेद धाँती पहने हुए है, हाथोंमें कोई अलंकार नहीं है, पर गलेमें इष्ट-कवच बँधा हुआ एक मोटा सोनेका हार है। जरा मुसकराकर बोली, “आप तो जब है तब हँसी करते हैं, लोग क्या समझेंगे, बताइए तो ? इसके सिवा मुझे क्या अब लौटके घर नहीं जाना है ?” यह कहकर वह दूसरे ही क्षण चहरा जरा उदास करके बोली, “जिनकी सेवा करने आई थी, वे तो धोखा देकर चलती बनीं; अब घर जाकर क्या बूढ़ सास-ससुरकी देख-भाल नहीं करना है ? आप ही बताइए ?”

गोलोक तम्बाकू पीते हुए जरा गम्भीर होकर बोले—सो तो ठीक ही है । अपनी गिरस्ती बिगड़ जानके डरसे नाते रिश्तेदारकी स्त्रीको तो पकड़के रखा नहीं जा सकता । और ऐसी ही होनहार न हांती तो भला घरकी लक्ष्मी ही इस उमरमें छोड़कर क्यों चली जाती ?—मधुसूदन !—अच्छी बात है, चली जाना कोई अच्छी-सी साइत सुधवाकर । बहनकी सेवा करने आई थी, सो सेवा तो तुमने खूब ही की । गाँवमें हमेशाके लिए एक दृष्टान्त बनी रहेगी ।

ज्ञानदा मौन बनी रही । गोलोक धोतीके छोरसे आँखें पोंछकर मिनटभर-तक चुपचाप धुआँ खींचते रहे, फिर भारी गलेसे बोले—मती लक्ष्मी थी, उसके दिन निबट चुके थे, चली गई ! उसके लिए मुझे दुःख नहीं है,—परन्तु, घर-गिरस्ती तो बिगड़ ही गई ममझा । लड़कियाँ बड़ी हाँ चुकी हैं, अपने अपने सासुरे जाकर अपना-अपना घर सम्हाल रही हैं, उनके लिए कोई फिकर नहीं; मगर, इस छोटे बच्चेका कौन सम्हाले ? यह तो अब नष्ट हो जायगा ।

ज्ञानदा आर्द्र कंठसे बोले उठी—भगवान ऐसा न करें ! आप ऐसी बात मुँहमें क्यों निकालते हैं ?

गोलोकने मुँह उठाकर जरा म्लान हँसी हँसकर कहा—निकालनी तो नहीं चाहिए, मगर सब तो आँखोंके सामने दिखाई दे रहा है न ।—मधुसूदन ! तुम ही सत्य हो !—घर-गिरस्तीमें मन नहीं है, और ज़मींदारीका काम-काज भी विष-सा मालूम हो रहा है । जितने दिन जीऊँ, व्रत-उपवास करने और तुम्हारा नाम लेनेमें ही बीत जायेंगे । इसके लिए मुझ चिन्ता नहीं है,—मुट्ठी-भर एक बेर मिल जाय तो भला, न मिले तो बाह-बाह, पर उस बच्चेकी आखिर क्या हालत होगी, यही सोचते,—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !

ज्ञानदाकी दोनों आँखें डबडबा आईं । गोलोककी स्त्री उसकी ममेरी बहन होनेपर भी अपनी सगी बहनके समान मानती और स्नेह करती थी । इसीसे कठिन रागमें जब उसने ज्ञानदाका याद किया तो फिर उससे बिना आये रहा न गया । वही जीजी, आज महीना-भर हुआ, इस लोकको छोड़कर चली गई; और, जाते वक्त अपने दस सालके लड़केको ज्ञानदाके हाथ सौंप गई ।

उसने करुण कंठसे कहा—पर, मैं तो हमेशाके लिए यहाँ रह नहीं सकती जीजाजी, लोग-बाग कहेंगे क्या, बताइए न ?

गोलोकने दोनों आँखोंमें दीप्ति लाकर कहा—लोग-बाग कहेंगे तुम्हारे लिए ! इसी गाँवमें रहते हुए ! !

इससे अधिक उनके मुँहसे कुछ नहीं निकला, और निकलनेकी ज़रूरत भी न थी ।

ज्ञानदा खुद ही इस बातको जानती थी, इसीसे वह चुप हो रही ।

गालोक कहने लगे—मेरी बातपर बात कहनेसे फिर उसे और कहीं जाकर रहना होगा,—इस गाँवमें नहीं । इसके लिए मैं नहीं सोचता, सोचता हूँ सिर्फ उस छोकरेके लिए । वह तुम्हें बहुत ही चाहती थी, इसीसे मरते समय अपनी सन्तानको तुम्हारे हाथ सौंप गई;—मेरे हाथमें क्यों नहीं सौंपा ?

ज्ञानदाने बड़ी मुश्किलसे आँसू रोकते हुए कहा—सब कुछ समझती हूँ जीजाजी, पर मेरे बूढ़े सास-ससुर जो अभीतक ज़िन्द हैं । मेरे सिवा तो उन लोगोंकी कोई गति ही नहीं ।

गालोकने उसे तुच्छ बात समझकर लापरवाहीसे जवाब दिया—नहीं, गति नहीं है ! तुम भी कैसी हो ! हाँ, मुखर्जी जीवित रहते तो एक बात भी थी; पर, उन्हें तो आँखोंसे भी नहीं देखा । तेरह सालकी उमरमें विधवा हुई हो—

ज्ञानदाने कहा—विधवा हूँ इसमें क्या जीजाजी,—सास-ससुर जबतक बने हैं, तब तक उनकी सेवा तो मुझे करनी ही होगी ?

गालोकने कुछ देर चुप रहकर एक गहरी साँस ली और कहा—तो जाओ हम सबको बहाकर । पर, एक बात सोच देखना छोटी मालिकिन ।

ज्ञानदा नाराज होकर कह उठी—फिर छोटी-मालिकिन ? कहा था न आपसे, लोग मज़ाक उड़ाते हैं ! क्यों, नाम लनेमें क्या होता है ?

गालोकने चेहरेका जरा प्रफुल्ल करते हुए कहा—उड़ाया करें मज़ाक, इससे क्या छोटी मालिकिन ? सम्बन्ध ही जो ठहरा हँसी-मज़ाक़ !

ज्ञानदा सहसा जरा हँसकर फिर तुरंत ही गम्भीर होकर बोली—नहीं, सो नहीं होगा, आप हमेशास नाम लेंगे आगे हैं,—सो ही लिया कीजिए ।

गालोकने कहा—अच्छा, अच्छा, सो ही हांगा ।

इतना कहनेके बाद देखते देखते उनका दाढ़ी-मूँछ-हीन चेहरा विषादसे भर गया; धीरेसे एक उच्छ्वसित निश्वासका दबाते हुए वे लगभग मन-ही-मन कहने लगे—छातीके भीतर दिन-रात धायँ-धायँ आग जल रही है,—हाय रे ! मैं हँसी करूँगा ! मज़ाक़ करूँगा ! पर, कभी कभी,—खैर जाने दो, नहीं कहूँगा । कोई असन्तुष्ट हो, जीवनमें जो कभी नहीं किया, आज क्या वही करने लग जाऊँ ?

—विषय विष है ! दुनियादारी ज़हर है ज़हर !—प्रभो, कब तुम्हारे श्रीचरणोंमें जरा-सा स्थान मिलेगा !—मधुसूदन !

ज्ञानदा डबडबाती हुई आँखोंसे चुपचाप देखती रही । गोलोक कहने लगे—और फिर ऊपरसे यह जलनके ऊपर जलन, दिन-रात घटकोंका उपद्रव ! वे जानते सब कुछ हैं, छिपा तां सकता नहीं,—मैं कहता हूँ, बात तुम्हारी मानता हूँ; कुलीनका कुल कुलीनका ही बचाना चाहिए, यह भी जानता हूँ; और शोकापाके कारण असमयमें बाल भी सफंद हो गये हैं, यह भी सच है, पर फिर एक बन्धनमें बंधना क्या मुझे शोभा देगा ? तुम ही बताओ न छोटी मालिकिन ?

ज्ञानदान जरा सूखी हँसी हँसते हुए कहा—अच्छा तो है, कीजिए न एक ब्याह ।

गोलोकने कहा—पागल हुई हो तुम ? फिर ब्याह ! लक्ष्मीके समान तुम जिसके घरपर मौजूद हो,—कुछ भी कहो, अनाथ बहनौतको ऐसे ही बहाकर तुम नहीं जा सकतीं !—मरते वक्त जो उसे तुम्हारे हाथ सौंप गई है, उसकी बात तुम्हें खवनी ही पड़ेगी, मेरी बात,—कौन है ?

नौकरने दरवाज़ेसे मुँह बढ़ाकर कहा—चोंगदार साहब आये हैं ।

गोलोकने मुँहका जरा विकृत करके कहा—उँह, मुझसे नहीं होता । काम, काम, धन-दौलत,—इधर जो मेरा सब कुछ ज़हर हो गया है, सो कैसे समझाऊँ और कौन समझे ?—मधुसूदन ! कब निस्तार करोगे !—जान, खड़ा क्यों रह गया, लिवा ला ।

नौकर चला गया, ज्ञानदान भी उधर दरवाज़ेके बाहर जाकर दबी ज़बानसे पूछा—इस छोक तो फिर सचमुच ही कुछ न खाओगे ?

गोलोकने सिर हिलाकर कहा—नहीं । प्रभु गोकुल भगवानके तिरोभावका पर्वका दिन है । छोटी मालिकिन, हम जैसे पुराने ज़मानेके लोग अब भी इन सब बातोंका मानते चलते हैं, इसीसे आज भी चन्द्र-सूर्य आकाशमें उदित होते हैं,—नदीमें ज्वार-भाटा होता है ।—मधुसूदन ! तुम्हारी इच्छा !

ज्ञानदान कहा—होने दो पर्व, जरा-सा दूध-गंगाजल मुँहमें डालनेमें दोष नहीं होगा । जरा जल्दी आइएगा, मैं लिये बैठी रहूँगी ।

इतना कहकर उसने दरवाज़ा बंद कर दिया ।

सामनेके दरवाज़ेसे नौकरके पीछे पीछे एक शरीफ आदमीने प्रवेश किया ।

गोलोकने उसे पास बुलाया—आओ चोंगदार, बैटो, मैं फिकरमें मर रहा था। जरा किसीसे खबर तो भिजवा देते ? भोलू, जा शूद्रके हुकमें पानी भरके जल्दीसे तम्बाकू भर ला।

विष्णु चोंगदारने प्रणाम करके गोलोकके पाँवोंकी धूल सिरसे लगाते हुए एक गहरी साँस ली, फिर कहा—दम मारनेकी फुरसत नहीं थी बड़े-बाबू, आप खबरकी कहते हैं ! खैर, पाँच सौ और तीन सौ,—आठ सौ तो जहाजपर लदवा दिये। ओः,—बड़ा शंखट है।

दक्षिण आफ्रिकामें फौजकी खुराकके लिए बकरे और भेड़, चालान करनेके कारबारमें यह विष्णु चोंगदार उनका साक्षीदार है। तीन महीनेमें तीन हजार जानवर सप्लाई करनेकी शर्तपर कन्ट्राक्ट तय हुआ है। इसीसे इस खबरसे गोलोक खुश न हुए। अप्रसन्न मुखसे बोले—कुल आठ सौ ? कन्टराक तो तीन हजारका है,—अभी तो बहुत बाकी हैं, जी।

चोंगदारने क्षुब्ध होकर कहा—बकर-भेड़ अब मिलते थोड़े ही हैं, बड़े बाबू ! सब चालान,—सब चालान,—यही आठ सौ इकट्ठे करनेमें नाकमें दम आ गया। हाँ, हरेनने रामपुरसे चिट्ठी लिखी है, आठ-दस दिनमें वह और भी पाँच-सात सौ रेलसे खाना कर रहा है,—सिर्फ उतारकर जहाजपर लद देना है। और अभी समय तो तीन महीनेका है,—हां ही जायगा नारायणकी इच्छासे।

गोलोकको तसल्ली हुई, बोले—तुम्हारा ही भरोसा है। मुझे तो अब एक तरहसे गृहस्थ-संन्यासी ही समझा। तुम्हारी बहूजीके मरनेके बादसे रुपया-पैसा एकदम ज़हर हो गया है। सिर्फ उस नाबालिग लड़केके लिए,—सा रुपयेमें रुपया पूरा पड़ेगा कि नहीं, कौन जाने ?

चोंगदारने गरदन हिलाकर कहा—ज़रूर, ज़रूर ! मगर रुपया पीटेगा अबकी अहमद साहब। सात सौका कन्टराक भिला है,—और भी ज्याँदका मिल जाता, सिर्फ रुपयकी कमीसे हिम्मत नहीं पड़ी उसकी।

गोलोकने आँखका एक इशारा करके पूछा—‘बड़ों’का था क्या ?

चोंगदारने कहा—हूँ, नहीं तो मैं भला छोड़ देता ?

गोलोक दाहिना हाथ मुँहके सामने रखकर कह उठे—दुर्गा दुर्गा ! राम राम ! सवेरे-ही-सवेरे ऐसी बात भी मुँहपर लानी चाहिए, चोंगदार ! जातका मलच्छ, धर्म-अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं,—हाँ तो दसेक हजार मार देगा, क्यों ?

चोंगदारने कहा—ज़्यादा ! ज़्यादा !

गोलोकने कहा—लड़ाई ज़्यादा दिन चल गई तो, देखता हूँ, बेटा ' लाल हो जायगा ' । यही तो दिखता है ।

चोंगदारने कहा—इसमें शक नहीं । मगर, बहुत रुपयोंका खेल है,—एक साथ जुटा सकें, तब समझिए ।

गोलोकने कहा—कन्ट्राक दिखाकर कर्ज लेंगा,—मुश्किल क्या है ?

चोंगदारने सिर हिलाते हुए कहा—सो तो ठीक है, पर मिलें तब तो । मुझे कह रहा था कि—

ख़बर सुननेके लिए गोलोक उत्सुक हो उठ, पूछने लगे—क्या कह रहा था ? सूद क्या देना चाहता है ?

चोंगदारने कहा—चार पैसा तो ज़रूर ही समझिए । शायद—

' शायद ' का गोलोकने खतम नहीं होने दिया । गुस्सेमें आकर बोले—चार पैसा ! रुपयमें रुपया मारंगा, और सूदके नाम चार पैसा ! दस आने-छै आने हो तो एक बार मिलनेका कह देना ।

चोंगदारने कुछ आश्चर्यमें आकर पूछा—रुपया क्या आप ही देंगे साहबको ? मगर बात खुल गई तो—

क्षण-भरमें गोलोकने अपनेको सावधान कर लिया और सूखी हँसी हँसकर कहा—राधा-माधव !—तुम पागल हुए हो चोंगदार ! बल्कि, हो सका तो मनाही और कर दूँगा !—और जाननेमें हम और तुम हैं ।—मगर, एक बात कहूँगा, रुपया तो वह कहींसे कहींसे उधार लेगा ही, लेकर बापका श्राद्ध करेगा या रंडी नचायेगा, या गाय चालान करेगा, इससे महाजनका क्या ?

यह कहकर चोंगदारके चेहरेकी तरफ सम्मतिके लिए क्षण-भर देखकर वे खुद ही बोले—सो बात नहीं, चोंगदार, सिर्फ एक बातकी बात कही है । इतनी खोज करनेसे महाजनका काम नहीं चल सकता । लेकिन, मुझे तो तुम हमेशासे देखते आये हो, ब्राह्मणका पुत्र हूँ, धर्म-मार्गपर चलकर भीख भी माँगनी पड़े, सो अच्छा; पर, अधर्मका पैसा न छूना पड़े । सिर्फ उन्हींके चरणोंमें मति स्थिर रखी है, इसीसे आज पाँच-पाँच गाँवका समाजपति बना हुआ हूँ । आज मुँहकी एक बातसे बाम्हनको सूदर, आर सूदरको बाम्हन बना दे सकता हूँ ।—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !—तबकी बार जो ज़ोरका बीमार पड़ा था, जयगोपाल

डाक्टरने कहा, सोडाका पानी तो मुझे पीना ही पड़ेगा। मैंने कहा,—डाक्टर, जन्मा हूँ तो मरना भी होगा, यह कोई बड़ी बात नहीं, पर इस गोलोक चटर्जी-को फिर कभी ऐसी बात न सुननी पड़े। केनारामका पुत्र और हरराम चटर्जीका नाती हूँ मैं,—जिसके एक बूँद पादोदकके लिए स्वयं भाड़ारहाँटीके राजाका भी पालकी और आदमी भेजने पड़ते थे !

चोंगदार दूसरी बार प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ, बोला—इस बातको कौन नहीं मानेगा ? बताइए,—यह तो दुनिया जानती है।

गोलोकने प्रत्युत्तरमें सिर्फ एक गहरी साँस लेकर कहा—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !

चोंगदार चलनेको तैयार हुआ तो उसे बुलाकर कहा—और सुनो, हरेनके पाससे आनेपर रेलकी रसीद जरा माँग लेना।

चोंगदारने गरदन हिलाकर कहा—जी हाँ।

गोलोकने कहा—ता, आठ सौ और पाँच सौ हुए ! बाकी रहे, सत्रह सौ,—तीन महीनेका समय है,—हां जायगा न, क्यों जी ?

चोंगदारने कहा—जी हाँ, सां क्यों नहीं।

गोलोकने कहा—इसीसे, तुमसे तभी कहा था चोंगदार, एकदम पूरा पाँच हजारका कन्टराक कर डालो। तब हिम्मत नहीं की—

चोंगदारने कहा—जी, उतने बकर-भेड़े अगर न इकट्ठे हो पाते—

गोलोकने प्रतिवाद नहीं किया, कहा—यही अच्छा, यही अच्छा। धर्म-मार्गपर एककी जगह आधा, आधकी जगह चौथाई हो, सां भी बहुत है; लेकिन, अधर्मके रास्ते मोहरें भी कुछ नहीं, समझे न चोंगदार ?—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !

चोंगदारने और कुछ न कहा, उसका चले जानपर भगवद्भक्त गृहस्थ-संन्यासी चटर्जी महाशय हुक्केको उठाकर चिन्तित मुखसे तमाखू पीने लगे, उसकी तमाखू तब तक जल चुकी थी। दुनियादारी शायद उन्हें विषके समान ही मालूम होने लगी; परन्तु, इतनेमें भीतरके दरवाजेको जरा-सा खोलकर नौकरानीने मुह बढ़ाकर कहा—मौसीजी जरा भीतर बुला रही हैं।

गोलोकने चौंककर पूछा—क्यों, बता तो सद् ?

नौकरानीने कहा—थोड़ा-सा जलपान लिये बैठी हैं मौसीजी।

गोलोकने हुक्का रखकर जरा हँसते हुए कहा—तेरी मौसीजीकें मारे तो मेरे नाकमें दम है, सद्। पर्वके दिन एक छाक उपास करूँगा, सो भी उससे नहीं सहा जाता !

यह कहते हुए वे उठ खड़े हुए और जात जाते एक गहरी साँस छोड़ते हुए कहते गये—घर-गिरस्तीमें रहते हुए परलोकके काममें कितने विघ्न आते हैं जिसका ठीक नहीं।—मधुसूदन हरि !



## ४

संध्याकी तबीयत इधर कुछ दिनोंसे ठीक नहीं रहती। अकसर बुखार आ जाया करता है, और मितांक इलाजसे तो धीरे धीरे उसकी हालत और भी बिगड़ती-सी जा रही है। मा रोज विपिन डाक्टरको बुलानेकी धमकी देती, और इसी बातपर अकसर मा-बेटीमें कलह हो जाया करता। आज शामके वक्त संध्या सामनेके बरामंदमें खूँटीके सहार बैठकर मांकें दिये हुए साबूदान किसी कदर आँख मीचके निगल गई, और झटपट एक बीड़ा पान मुँहमें देकर उल्टी रोकनेकी कोशिश करने लगी। इस पथ्यसे उसे बड़ी घृणा हो गई थी। परन्तु, फिर भी, खाने और कम खानेके विषयको लेकर बात ब्रह्मन्की उसे इच्छा न थी। कहींसे न कहींसे मा तो देख ही रही होगी, यह बात वह निश्चित जानती थी। इसके पहले शायद वह कोई किताब पढ़ रही थी,—उसकी गोदमें पुस्तकके खुले हुए पन्ने उलटे रखे थे। उसे फिरसे उठाकर ज्यों ही वह पढ़ने लगी, त्यों ही सुना कि आँगनके उस तरफसे कोई बुला रहा है—चाची, कहाँ हो ?

जो घरमें आया, वह अरुण है। उसकी धोती, कपड़े और थका हुआ चेहरा देखते ही समझमें आ गया कि वह अभी हाल ही कहीं बाहरसे आ रहा है।

क्षण-भरके लिए संध्याके पांडुर मलिन मुखपर एक रक्तिम आभा दिखाई दे गई। उसने आँख उठाकर मुसकराते हुए पूछा—तुम शायद कलकत्तेसे आ रहे हो न, अरुण-भइया ?

अरुणने पास आकर आश्चर्यके साथ कहा—हाँ, मगर तुम इतनी सूखी-सी क्यों दिखाई देती हो ? फिर बुखार आ गया है क्या ?

संध्याने कहा—ऐसा ही कुछ होगा शायद । मगर तुम्हारा चेहरा भी तो खूब ताजा नहीं मालूम होता ।

अरुणने हँसकर कहा—चेहराका इसमें क्या कुसूर है ? दिन-भर न नहाना हुआ न खाना, पैटर्नकी तुम्हारी खूब परमायश थी, ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गया । ये लो ।

यह कहते हुए उसने जेबसे एक कागजका बंडल निकालकर संध्याके हाथमें दे दिया, बोला—चाची कहाँ हैं ? चाचा बाहर निकल गये हैं शायद ? पिछले सनीचरको किसी भी तरह गाँव न आ सका,—इसीस लानेमें देर हो गई । क्या बुनोगी, चिड़िया-चिरौंटा, या देवी-देवता ? या गुलाब फूलकी—

संध्याने कहा—उसकी फिकरके लिए बहुत समय है । लेकिन जिसके लानेमें सात दिनकी देर हो गई, उसे देनेमें क्या घंटे-भर भी सबर न हुआ ? स्टेशनसे घर न जाकर सीधे यहीं क्यों चले आये ?

अरुण हँसता हुआ बोला—नहाने-खानेकी कहती हो ? सो वह तो संध्याके बाद होगा । मगर जल्दी-जल्दी इतनी तबीयत क्यों खराब होने लगी, बताओ तो ?

उसके 'संध्या' शब्दमें छिपे हुए एक निगूढ़ कटाक्षन संध्याके कर्ण-मूलपर आघात करके उन्हें जरा सुर्ख कर दिया । परन्तु, मानो लक्ष्य ही नहीं दिया इस तरह गुस्सा होकर, उसने कहा—उसमें अब बाकी ही क्या है अरुण-भइया ? जाओ, झूठ-मूठकी देर मत करो ।

उत्तरमें अरुण फिर हँसकर कुछ कहना चाहता था; परन्तु, जगद्धात्रीके मुँहकी ओर देखकर उसके मुँहकी बात मुँहमें ही रह गई । वह मोर क्रांथके मुँह स्याह किये कमरेसे बाहर निकल आई और लड़कीको लक्ष्य करके बोली—पान अब चबाये ही मत जा संध्या, उसे थूककर जितना जी चाह उतना हँसी-मजाक कर ।

इतना कहकर वह किसीकी तरफ बिना देख ही जल्दीसे भीतर चली गई ।

अकस्मात् न जाने कैसा एक कांड-सा हो गया । अरुण चुपचाप खड़ा रह गया, जैसे उसपर बिजली पड़ गई हो । संध्या भी फक पड़ गई । कुछ देरके लिए संध्याकाशका सारा प्रकाश मानो बिलकुल बुझ गया । कुछ क्षण इसी तरह रहकर संध्याने मुँहका पान थूक दिया, फिर रानी-सी होकर वह-कहने लगी—क्यों तुम इस घरमें अब आते हो अरुण-भइया ? क्या तुम हम लोगोंका सत्यानास बिना किये न छोड़ोगे ?

पहले तो अरुण एक शब्द भी न कह सका, उसके बाद धीरे-धीरे सिर्फ इतना बोला—मुँहका पान थूक दिया संध्या !—मैं क्या सचमुच ही तुम्हारे लिए अस्पृश्य हो गया ?

संध्या सहसा रो पड़ी, बोली—तुम्हारी न जान है, न धर्म है,—क्यों तुमने मुझे छू दिया ?

“ मेरी जात नहीं ? धर्म नहीं ? ”

“ नहीं, नहीं है । तुम विलायत गंधे हो,— तुम म्लेच्छ हो । उस दिन माने तुम्हें पीतलकी लुटियामें पानी पीने दिया था, तुम्हें याद नहीं है ? ”

अरुणने एक लम्बी साँस लेकर कहा—नहीं, मुझे याद नहीं है । मगर तुम्हारे निकट मैं आज अस्पृश्य हूँ, म्लेच्छ हूँ !

संध्याने आँखें पोंछकर कहा—सिर्फ मेरे निकट ही नहीं, सबके निकट । सिर्फ आज ही नहीं, जबसे किसीकी मनाही नहीं सुनी, विलायत चल गंधे, तभीसे ।

अरुणने कहा—मगर मैंने समझा था—

मगर, क्या समझा था, सो वह कुछ भी न कह सका । पल-भर स्थिर रहकर बोला—मैं फिर शायद इस घरमें नहीं आऊँगा, पर मुझसे तुम घृणा मत करो संध्या,—मैंने कोई घृणित काम कभी नहीं किया ।

संध्याने कहा—तुम्हें क्या भूख-प्यास नहीं लगी है, अरुण-भइया ? तुम क्या खड़े-खड़े मेरे साथ सिर्फ झगड़ा ही करते रहोगे ?

अरुणने कहा—नहीं, झगड़ा मैं नहीं करूँगा । जो घृणा करता है, उसके साथ आमने-सामने खड़े होकर विवाद करूँ, इतना छोटा मैं नहीं हूँ ।

यह कहकर अरुण धीरे-धीरे बाहर चला गया,—संध्या उस ओर एक दृष्टिसे देखती हुई पापाण-प्रतिमाकी तरह बैठी रह गई ।

माने सामने आकर प्रसन्नमुखसे कहा—जाने दे, अब शायद नहीं आयेगा । संध्याने चौंककर कहा—नहीं ।

माने कहा—खामखा छू दिया, जा, कपड़े बदल डाल ।

संध्याने माँके मुँहकी ओर देखकर कहा—कपड़े तक बदल डालने होंगे ?

उसके म्लान मुखके अन्तरंगकी तसवीर जननी न देख सकी । उसने आश्चर्यसे कहा—बदलने न होंगे ? किस्तान आदमी ठहरा,—कोई विधवा बड़ी-बूढ़ी होती तो नहाना पड़ता । उस दिन रासू-मौसी,—हाँ, वह अपनी बड़ाई

जरूर करती है,—पर, आचार-विचार सीखना हो तो उससे सीखें। दूलेकी छोकरीने छुआ हो, चाहे न छुआ हो, तो भी नातिनीको उतनी अबरमें तालमें डुबकी दिलवाई तब घरमें घुसने दिया।

संध्याने कहा—अच्छी बात है मा, जाती हूँ।

मा गरदन हिलाकर ब्राह्मणोंके आचार-विचारके सम्बन्धमें शायद और भी कुछ उपदेश देने जा रही थी, पर पीछेसे बुलाहट सुनकर रह गई—

“जगो, घरमें है क्या?”

गोलोक चटर्जी महाशय एकदम आँगनकं बीचमें आ खड़े हुए; जगद्धात्रीने मुड़कर कहा—अरी मैया, चटर्जी-मामा आये हैं! बड़े भाग्य हैं!

परन्तु, उस दिनकी रासू-मौसी और अपनी लड़कीकी बात याद करके उसका मुँह सूख गया। संध्या उठकर खड़ी हो गई थी, गोलोकने माकी बातका जवाब न देकर लड़कीसे ही सम्भाषण किया। हँसकर कहा—कहां, मेरी संध्या-नातिनी, कैसी हो? कुछ दुबली सी दिखाई दे रही हो?

संध्याने कहा—नहीं तो, अच्छी ही हूँ बाबा।

जगद्धात्रीने अपने सूखे मुँहपर जरा हँसी लाकर कहा—हाँ, अच्छी तो है ही! महीना पूरा होना आया मामा, रोज बीमार, रोज बुखार। आज भी तो साबू खाये हैं।

गोलोकने कहा—अच्छा, यह बात है क्या? सो हांगा क्यों नहीं बेटी,—कहाँ आज वह गाँदमें बाल-बच्चें लिये घर-गिरस्ती करती और कहाँ तुम लोगोंने उसे लटकाके रख दिया! ब्याहंगी अब कब इस? उमर तो—

जगद्धात्रीने उमरकी बातका चटपट दवा देते हुए कहा—मैं अकेली औरत-जात किधर-किधर सम्हालूँ? तुम्हारा दमाद तो कुछ मुनते ही नहीं,—डाक्टरोंमें ही पागल रहते हैं,—धक्कारक मारे मेरा तो ऐसा जी हाँता है मामा, कि सब छाड़-छाड़कर सासके पास काशी जा रहूँ। फिर जिसके जो भाग्यमें हो, हो।

कहते-कहते उसका गला गद्गद हो आया।

गोलोकने कहा—वह पागल अब करता क्या है?

जगद्धात्रीने कहा—सो, बिलकुल पागल ही हो जायें तो जान बचे, घरमें जंजीरसँ बाँधकर रख तो भी सकूँ। वह तो दोनोंके बाहर हैं,—न इधरके, न उधरके,—मुझे तो जला-जुलूकर बिलकुल खाक कर दिया।

इतना कहकर जगद्धात्रीने आँचलसे आँखें पोंछ डालीं ।

गोलोकने सहानुभूतिके स्वरमें कहा—सो तो है ही,—मैं सब हाल सुना करता हूँ । सो, तुम लोग भी तो बेटी, धनुष-ताड़ प्रतिज्ञा कर बैठी हो,—स्वयं कामदेव बिना मिले और किसीको लड़की ही न ब्याहोगी ! हम सब भारी कुलीनोंके घर क्या कभी ऐसा हो सकता है, या हुआ है ? सुना नहीं तूने, उस ज़मानेमें कितने कुलीनोंको गंगा-यात्रा करते हुए भी कुलीनके कुलकी रक्षा करनी पड़ती थी ?—मधुसूदन ! तुम्हीं सत्य हो !

जगद्धात्रीने क्षुब्ध होकर कहा—किसने तुमसे कहा है मामा, जमाई मेरा मयूरपर चढ़के न आयेगा तो लड़की न दूँगी ? लड़की पहले है कि कुल पहले ? वंशमें किसीने कभी सूदूर होनेसे कायथोंके घर भी पैर नहीं धोये, और मैं चाहूँगी कामदेव ? छोटे घरमें न दूँगी, यह मेरा प्रन है,—लड़कीको चाह भले ही कुँएमें ढकेलना पड़े ।

गोलोकने खुश होकर कहा—यही बात है न ? अच्छा मैं देखूँगा ।

जाय-जाय करके भी संध्या सिर झुकाये वहीं खड़ी रही, उसका चेहरा सुर्ख हो रहा था । गोलोकने उसकी तरफ देखकर हँसते हुए X कहा—कामदेव अगर नहीं चाहती जग्गा, तो अपनी लड़कीको मेरे ही हाथ क्यों नहीं सौंप देती ! रिश्तेमें भी रुकावट नहीं, और रहेगी भी राजरानी होकर । क्या कहती है नातिनी,—पसन्द हूँ मैं ?

और किसी समय होता, तो इस मज़ाकमें संध्या भी भाग ले सकती थी; परन्तु, अरुणसे लेकर पिता तकका प्रसंग छिड़ जानेसे वह क्रोधसे, दुःखसे, लज्जासे जली जा रही थी;—मुँह उठाकर उसने कठोर होकर जवाब दिया—पसन्द क्यों न आओगे बाबा ? बाँस और रस्तीके रथपर सवार होकर इधरहीसे निकलिएगा, मैं माला गूँथके तैयार खड़ी रहूँगी तब !

इतना कहकर वह जल्दीसे पिछवाड़ेके दरवाजेसे बाहर चली गई ।

वह खूब गुस्सा होकर चली गई है, यह बात बिलकुल स्पष्ट थी । व्यर्थक मज़ाकमें इस तीव्र लांछनासे पहले-पहल गोलोक दंग रह गये, बादमें कहकहा मारकर थोड़ी-सी सूखी हँसी हँसकर बोले—लड़की तो जैसे विलायती पलटन

---

X बंगालमें नातिनी और दोहितीसे मज़ाक करनेकी प्रथा है ।

हो ! यह तो, खैर, बाबा-नातिनीका सम्बन्ध है,—कह भी सकती है,—पर उस दिन रासूके मुँहसे सुना कि जो मुँहमें आया सो ही कह डाला । मा-बाप तकको रिहाई नहीं दी ।

शुरूमें जगद्धात्रीको ठीक इसी बातका डर था, सिर्फ़ बीचमें उसे आशा हो गई थी कि मज़ाक़में शायद वह अलफ़ टल गई । शायद टल ही जाती, पर लड़कीन ही निरर्थक बामीमें लकड़ी कौंचकर सॉपको बाहर निकाला । लड़कीपर उसके गुस्सेकी हद न रही, मगर ऊपरसे विनयके साथ बोली—नहीं मामा, संध्यांन तो ये सब बातें कुछ नहीं कहें । मौसी तिलका ताड़ बना देती हैं, सां तो तुम अच्छी तरह जानते ही हो ।

गोलोकने कहा—सां तो जानता हूँ । किन्तु, मेरे साथ ऐसा नहीं करती ।

जगद्धात्रीन कहा—मैं तो तब वहीं खड़ी थी, मामा ?

गोलोकने हँसकर कहा—तब सां और भी अच्छा । तुझसे डाँटते भी नहीं बना ?

इस हँसीसे जगद्धात्री मन-ही-मन कुछ बल पाकर गुस्सेसे बोली—डाँटना ? तुम देख सां लेना, मामा, उसकी मैं कैसी दुर्गत करती हूँ ।

गोलोकने स्निग्ध भावसे कहा—रहने दे, दुर्गत करनेकी अब ज़रूरत नहीं,—ब्याह होनेपर घर-गिरस्तीका बोझ पड़नेपर आप ही सुधर जायगी;—फिर भी, डाँट-डपट थोड़ी बहुत रखना ही चाहिए । समय बड़ा खोटा आ गया है न ? अरु आता है अब ?

जगद्धात्री डरके मारे झूट बोल बैठी—अरुण ? नहीं तो—

गोलोकने कहा—अच्छी बात है । उस छोकरेको आने मत दिया कर । तरह-तरहकी कानाफूसी सुननेमें आती है ।

अरुणको संध्या बचपनहींसे भइया कहकर पुकारती आई है । उसक विलायत जानेसे पहल तक दोनोंमें काफी सौहार्द था । परन्तु वह ब्राह्मण-वंशकी इतनी नीची सीढ़ीमें था कि दोनोंका यह स्नेह कभी किसी कारणसे आर किसी आकारमें रूपान्तरित हो सकता है, यह संशय स्वप्नमें भी मांक मनम उदित नहीं हुआ था । मगर कुछ दिनोंसे संध्याके आचरण और बात-चीतसे कभी-कभी ऐसी एक तीव्र ज्वाला आत्म-प्रकाश कर बैठती थी कि उसकी मिची हुई आँखोंमें भी उसका आभास आ पड़ता । परन्तु, अन्ततोगत्वा यह बात

इतनी असम्भव थी कि फिर उसने इस विषयमें उद्दिग्ध होनेकी भी जरूरत महसूस नहीं की। अब उसी बातका स्पष्ट इशारा दूसरेके मुँहसे सुनकर सहसा वह धीरज न रख सकी। तखे स्वरमें कह बैठी—सुननेको तो बहुत-कुछ सुना जा सकता है, मामा, मगर मेरी लड़कीके बारेमें लोगोंके सिरमें इतना दर्द क्यों ?

गोलोकने मन्द मुसकराहटके साथ कहा—ठीक ही बात है। पर समयपर सावधान हुए बिना लोगोंका जला मुँह रोका भी तो नहीं जाता, जगो !

जगद्धात्री इसके भी उत्तरमें कुछ कहना चाहती थी, पर ठीक इसी समय संध्याका कांड देखकर वह भय विस्मय और भयानक क्रोधसे निर्वाक् हो गई। संध्या पोखरसे नहाकर घरमें घुस रही थी, उसके कपड़े भीगे थे और सिरके बालोंसे पानी झर रहा था; अभीतक पोंछनेकी फुरसत नहीं मिली;—इसी अवस्थामें बगलसे निकलकर वह अपने कमरेमें चली गई।

गोलोकने कहा—लड़कीको बुखार न बताया था जगो, शामके वक्त यह नहा आई जो ?

जगद्धात्रीने सिर्फ इतना जवाब दिया, ‘क्या जानूँ मामा’; परन्तु, मन-ही-मन वह निश्चय ही समझ गई थी कि यह उसीके विरुद्ध अरुणको अपमानित करनेका गूढ़ और कठोर बदला है।

गोलोकने कहा—इस तरहकी बढ़ाबढ़ी करनेसे तो हालत बहुत खराब हो जायगी ?

जगद्धात्रीने कहा—होगी तो अब क्या किया जाय, बताओ ? वह मेरे हाथके बाहर है।

गोलोकने सिर हिलाते हुए कहा—सो तो समझ गया। अच्छा, मैं पूछता हूँ, इस घरका मालिक कौन है ? तू, या कि जमाई, या तेरी लड़की ?

जगद्धात्रीने कहा—मेरे सिवा और सभी-कोई मालिक हैं।

गोलोकने कहा—तो उनसे कह देना कि मुहल्लेमें दूले-बागदी रियाया बसानेसे नहीं चलेगा। वे अगर इसका कुछ इन्तजाम न करेंगे तो मुझहीको करना पड़ेगा।—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !

प्रत्युत्तरमें जगद्धात्रीने क्रोधके साथ आवाज़ दी—सन्धी, इधर आ !

सन्ध्या कमरेके भीतर शायद बाल अँगोछ रही थी, जरा-सा मुँह निकालकर बोली—क्यों मा ?

माने कहा—उन लोगोंको तू हटायेंगी, या मुझे ही कल नहानेसे पहले झाड़ू मारकर निकालना पड़ेगा ?

संध्याने कहा—दुःखी अनाथ औरतोंको झाड़ू मारना तो कठिन काम नहीं है मा, पर उन लोगोंने क्या किसीका कुछ नुकसान किया है ?

गोलोकने इसका जवाब दिया । बोले—नुकसान करतीं क्यों नहीं ! परसों टहलके लौटते वक्त देखा कि सड़कपर खड़ी खड़ी बकरीको मॉड़ पिला रहीं हैं । छिटकके गिरता तो है ही ?

यह कहते हुए उन्होंने जगद्धात्रीके मुँहकी ओर देखा ।

जगद्धात्रीने उसी वक्त उनकी बातका समर्थन करते हुए कहा—गिरेगा क्यों नहीं मामा, गिरता ही है ।

गोलोकने कहा—भला बताओ तो । बिना जाने साँपका विष भी खाया जा सकता है, पर जानके तो नहीं न खाया जा सकता ?

फिर संध्याकी तरफ देखकर हँसते हुए कहा—तुम्हारी अभी कच्ची उमर है नातिनी, तुम चाहो तो रातको भी नहा सकती हो, मगर मुझसे तो नहीं होगा !

संध्याने भीतरके दुर्दमनीय क्रोधको दबाते हुए कहा—सो जानती हूँ नाना । मगर, बाबूजीने जब कि उन्हें आश्रय दिया, तब और कहीं उनका ठिकाना बिना किये यों ही निकाल देना भी तो बाबूजीका ही अपमान है,—यह मैं कैसे करूँ ?

लड़कीकी इस मान-अपमानकी धारणापर माको इतना गुस्सा आया कि उसके मुँहसे बात ही न निकली । गोलोकने जवाब दिया—अच्छी बात है, उसकी कमी ही क्या है । अरुणके घरके पीछे बहुतसी ज़मीन पड़ी है, उसीसे कह न आश्रय देनेको ! बाग़दी-डूले कोई भी हों, हैं तो वे हिन्दू ही,—इससे उसकी जात थोड़े ही मारी जायगी ।

इतना कहकर वे जगद्धात्रीके मुँहकी ओर देखते हुए मन्द मन्द हँसने लगे । जगद्धात्रीने इस विनोदको कितना ही ज्यादा हृदयंगम क्यों न किया हो; पर, इस डरसे कि कहीं अरुणकी बातपर उनकी हिताहित-ज्ञान-शून्य लड़की कोई कड़ी बात न कह बैठे, उसकी घबड़ाहटकी सीमा न रही ।

ठीक वही हुआ। संध्याके कंठसे परिहासकी तरलता छलक उठी; परन्तु, बातें सुनाई दीं अत्यन्त तीखी और कठोर। बोली—और जात जाय भी तो कौन उसका जमा-खर्च रखता है? बताइए। जो जात ही नहीं मानता, उसके लिए जाना-रहना दोनों बराबर हैं।

गोलोकने हँसनेकी कोशिश की; पर, चेहरा उनका स्याह पड़ गया। बोले—उसके साथ तुम्हारी इन्हीं सब बातोंकी सलाह होती होगी, क्यों?

संध्या खिलखिलाकर हँस पड़ी, बोली—हाय-हाय, नाना, वह जब आप-लोगोंको भी कुछ समझते नहीं, कुत्ते-बिल्लियोंमें शामिल करते हैं, फिर भला मेरी क्या चलाई!

इतना कहकर वह वाद-प्रतिवादकी प्रतीक्षा किये बिना ही पल-भरमें वहाँसे गायब हो गई।

जगद्धात्रीसे अब न सहा गया, वह डाँटकर कहने लगी—अभागी! दूसरेके लड़केको झूठे ही क्यों बदनाम करती है! उसे कौन नहीं जानता! उसने ऐसी बात कभी नहीं कही, मैं गंगाजल छूकर कह सकती हूँ!

परन्तु, घरके भीतरसे कोई जवाब नहीं आया। गोलोकने कहा—नहीं, जगो, आजकलके लड़के-लड़कियाँ सब ऐंसे ही हैं। सो अच्छी बात है, कुत्ते-बिल्ली ही सही। मगर, एक बात कहे जाता हूँ आज, अब लड़कीको ब्याहनेमें देर मत करना। जहाँ-कहीं हो, जल्दी इस पापसे छुटकारा पा ले,—बला टले।

जगद्धात्री रो दी; बोली—ठीक कर दो न मामा, कहीं देख-सुनकर। अब तो मेरी अकल ही काम नहीं करती।

गोलोकने सिर हिलते हुए कहा—अच्छा, देखूंगा। पर बात यह है बेटी, तेरे एक ही लड़की है। दूर ब्याह देगी तो तुझसे रहा नहीं जायगा, रोते-रोते मर भिटेगी। हम लोगोंके यहाँ वरकी उमर देखनेसे काम नहीं चलता। पर हाँ, नजदीक हो, दोनों जून आँखोंसे देख सको, तो इससे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है?

जगद्धात्रीने आँखें पोंछते हुए करुण-कंठसे कहा—इतना सुभीता कहाँसे हो सकता है मामा? हाँ, अगर घर-जमाई—

गोलोकने बात खतम न होने दी; बोल उठे—छि-छि, ऐसी बात मुँहसे भी मत निकाल, जगो! घर-जमाईसे बढ़कर काल और है ही नहीं, उससे बड़ी

निन्दा होती है। और मान ले, अगर कहींसे गँवार-भोंदू पकड़ भी लाया गया, तो गाँजा-चण्डू खा-पीकर, मतवाला बनकर, सब उड़ा-उड़ू देगा। तू अपने ही बारेमें देख ले न ?

इसके भीतरका इशारा समझकर जगद्धात्री उसी वक्त उत्तेजित हो उठी; बोली—हमेशासे ही देख रही हूँ मामा, हमेशा ही जलती-कुढ़ती मरती रही।

गोलोकने मन्द मुसकराते हुए कहा—हाँ, यही तो बात है। बिना काम-धन्धेके बैठे बैठे खानेसे यही तो होता है। तुझ जैसी बुद्धिमती इस बातको कैसे नहीं समझेगी ?

जगद्धात्रीने खुश होकर कहा—समझती हूँ, भीतर-ही-भीतर सब समझती हूँ। पर, मैं जो औरत ठहरी, किसी तरफ मुझे किनारा जो नहीं दिखाई देता।

गोलोकने आश्वासन देते हुए कहा—देगा, देगा, सब दिखाई देगा। जल्दी क्या है,—देखूंगा जरा सोच-विचार कर। पर आज जाता हूँ, शाम हो गई।

जगद्धात्रीने बिनतीके स्वरमें कहा—मामा, खड़े खड़े ही चल दिये, बैठोगे नहीं तनिक ?

गोलोकने कहा—नहीं बेटो, संध्या-जापका समय निकला जा रहा है,—आज अब और देर नहीं करूँगा।

इतना कहकर वे धीरे धीरे बाहर निकल गये। जगद्धात्री उन्हें आगे पहुँचानेके लिए दरवाजेके बाहर तक साथ साथ गई।



सबरेके वक्त प्रिय बाबू अत्यन्त व्यस्तताके साथ प्रैक्टिसके लिए जा रहे थे,—बगलमें होमियोपैथिक किताबें दबी हुई थीं और हाथमें तौलियेमें बँधा दवाइयोंका बक्स था;—पीछे पीछे दूलेकी विधवा स्त्री मिन्नत करती हुई जा रही थी—महाराजजी, तुम दया न करोगे तो अब हम लोगोंका और कहाँ ठिकाना है ?

प्रिय बाबूको मुँह फेरकर बात करनेकी फुरसत न थी। उन्होंने बायें हाथको पीछेकी तरफ हिलाते हुए कहा—नहीं, नहीं, नहीं,—तुम लोगोंको मैं अब रख नहीं सकता, तुम लोग बड़े शैतान हो। क्यों तूने बकरीको माँझ पिलाया ?

दूले-बहूने आश्चर्यके साथ कहा—सभीके बकरी-बच्चे तो माँड़ पीते हैं, महाराजजी !

प्रिय बाबूने बहुत ही बिगड़कर कहा—फिर झूठी बात, हरामजादी ! किसी-की भी बकरी माँड़ नहीं पीती । बकरी घास खाती है ।

दूले-बहूने कहा—घास खाती हैं, पत्ते-वत्ते भी खाती हैं, और माँड़ भी पीती महाराजजी !

प्रिय बाबूने उसी तरह हाथ हिलाते हुए कहा—नहीं नहीं, तुम लोगोंको मैं नहीं रखूँगा, तू आज ही निकल जा । गोलोक चटर्जी कह गये हैं, ब्राह्मणोंके मुहल्लेमें तुम लोगोंने बकरीको माँड़ पिलाया है । अब तुम लोगोंपर मेरी दया नहीं रही,—तुम लोग बड़े शैतान हो ।

दूले-बहूने आखिरी भिन्नतकी—तो, माँड़को क्या फेंक दिया करूँ महाराजजी ?

प्रिय बाबूने बिना किसी संकोचके कहा—हाँ, फेंक देना होगा । तुम लोगोंके गाय होती, तो पिला सकती थीं, कोई दोष नहीं था । मगर यह तो बड़ी खराब बात है । आज ही चली जा,—समझी ?—ओः बहुत अंबेर हो गई,—सलफर देनेका वक्त बीता जा रहा है ।

कहते हुए वे जल्दीसे जाने लगे, इतनेमें फिर दूले-बहूने पीछेसे करुणस्वरमें कहा—महाराजजी, कलका तमाम दिन-रात बीत गया, लड़कीके पेटमें लछमीजीका दाना तक नहीं पड़ा—

प्रिय बाबू उसी क्षण मुँडकर खड़े हो गये, बोले—क्यों, क्यों ? दस्त हो रहे हैं क्या ? जी मचलाता है ?

दूले-बहूने सिर हिलाया ।

“ तो क्या बात है ? पेट फूल गया है ? भूख नहीं लगती ? ”

“ भूख तो बहुत है महाराजजी । ”

प्रिय बाबूने कहा—अच्छा,—तो कहती क्यों नहीं । यह भी तो एक बड़ी भारी बीमारी है,—नैट्रम, आइयोडम,—और भी बहुतसी दवाएँ हैं । तबसे कहा क्यों नहीं,—देख-भालकर एक खुराक दे देता । चल तो देखूँ ।—

दूले-बहूने इधर-उधर करते हुए कहा—दवाई नहीं चाहिए महाराजजी,—थोड़ेसे चावल मिल जाते तो लड़कीको राँध देती—

प्रिय बाबूने कुछ देर तक विस्मयके साथ देखते रहकर जल-भुनकर कहा—

दवा नहीं चाहिए, चावल चाहिए ! चल, हट जा मेरे सामनेसे, हरामज़ादी ! छोटी जातके मुँहमें आग दे दे उठाके !

दूले-बहू लज्जित होकर लौटना ही चाहती थी; इतनेमें, प्रिय बाबूने फिर कड़ककर कहा—खानेको नहीं है तो संध्याके पास जाकर क्यों नहीं कहती ?

दूले-बहूने सिर्फ मुँह उठाकर देखा और चुप रह गई ।

प्रिय बाबूने कहा—उसकी माके पास जाकर मत मरना । घाटके पास जाकर खड़ी रहना; संध्या आवे तब उससे कहना,—मेरे दवा-वाले बाक्समें एक अठन्नी पड़ी है, दे दे । मगर खबरदार, कहे देता हूँ, बीमार हो तो पहले मुझे बुलाना होगा । तब विपिनके पास जाकर,—कौन ? त्रिलोकी हो क्या ? षष्ठी-चरण हो ?—कहो, घरमें तो सब अच्छी तरह हैं ?

दूले-बहू चुपचाप लौट गई । त्रिलोकी और षष्ठीचरणने सामने आकर प्रातः प्रणाम करके कहा—जी हाँ, आपके आशीर्वादसे सब अच्छे हैं ।

प्रिय बाबूने अस्फुट स्वरमें आशीर्वाद देते हुए कहा—अच्छी बात है, अच्छी बात है । ऐसा वक्त आ पड़ा है कि मुझे तो खाने-पीनेकी भी फुरसत नहीं मिलती । घर-घरमें जुकाम-खाँसी;—जरा-सी लापरवाही की नहीं कि ब्रंका-इटिस !—सबरे ही किधर चल दिये ?

त्रिलोकीने कहा—जी, आपहीके पास ।

प्रिय बाबूने उत्साहित होकर पूछा—क्यों, क्यों, मेरे पास क्यों ?

त्रिलोकीने कहा—लोगोंका जाने-आनेमें बड़ी तकलीफ होती है, जमाई-बाबू ! इसलिए बड़े नालेपर एक मचानका पुल बनाना है । पर, आपके उस छोटे बाँस-भिड़ेके दिये बिना तो कुछ होता नहीं ।

प्रिय बाबूने गुस्सेके साथ कहा—मैं उसे क्यों देने लगा ? गाँवमें क्या और आदमी नहीं हैं ?

बूढ़ा षष्ठीचरण अब तक चुप था, अब उसने गरदन झुकाकर फिर प्रणाम किया और कहा—अगर अभय दें तो मैं कहूँ जमाई-बाबू,—इस गाँवमें आपके सिवा और आदमी ही नहीं । आप दया करें तो दस-भाइयोंका चलनेमें सहूलियत होगी; नहीं तो, हम किसान आदमी ठहरे, बाँस खरीदनेको रुपये कहाँ पायेंगे ?

प्रिय-बाबूने क्षण-भर मौन रहकर प्रश्न किया—लोगोंको सचमुच तकलीफ हा रही है क्या ?

त्रिलोकीने कहा—मरे जाते हैं महाराजजी, हाथ-पैर तोड़ तोड़कर बिल्कुल मरे जाते हैं !

प्रिय-बाबूने कहा—मगर, घरमें सुनेगी तो बहुत खफा होगी ।

पश्रीचरणने कहा—आप दे देंगे तो फिर वे क्या करेंगीं ? तब, न हो तो, सब-क-सब जाकर उनके पैरोंपर पड़ जायेंगे ।

प्रिय-बाबू चिन्तितसे होकर कुछ देर तक खड़े रहे; फिर बोले—लोगोंको तकलीफ होती है, अच्छा, ले लो जाओ,—मगर, संध्याकी माको मालूम न होने पावे ! उफ् बड़ी अबेर हो गई,—रसिक बाग्दीकी बहूका रातको क्या हाल रहा होगा, कौन जाने ! ब्रायोनियाका ऐक्शन,—हिलने-डुलनेमें दर्द,—यह तो होगा ही । अच्छा, तो मैं जाता हूँ,—जाता हूँ—

इतना कहकर प्रिय बाबू फौरन ही वहाँसे अदृश्य हो गये ।

बूढ़ा पश्रीचरण जरा हँसा; परन्तु, त्रिलोकीने कहा—लोग कहते तो इन्हें सनकी हैं; पर चचा, सनकी महाराजके सिवा गरीब-दुखियोंका दुखड़ा समझने-वाला कोई नहीं । मन तो गंगाजल-सा सादा है, छल-कपट कुछ नहीं ।

यह कहकर उसने, जिस ओर सनकी महाराज गये थे, उस तरफ हाथ जोड़-कर नमस्कार कर लिया ।

पश्रीचरणने कहा—हुक्म हां गया, अब देर मत करो त्रिलोकी, काम झटपट कर डालना ही ठीक है ।

त्रिलोकीने गरदन हिलाते हुए कहा—हाँ, अब चल दो चचा ।



## ६

संध्याका अन्धकार धीरे धीरे गाढ़ा होता जा रहा था; परन्तु, तब भी बत्ती नहीं जलाई गई थी । अरुण अपने पढ़नेके कमरेमें अकेला बैठा टेबिलपर पैर फैलाये छतकी कड़ियोंकी तरफ एकटक देख रहा था । उसकी गोदमें एक किताब खुली पड़ी थी; पर, जरा-सा ध्यान देनेसे मालूम हो जाता था कि शामके अँधेरेके कारण ही किताब पढ़ना बन्द कर दिया हो, सो बात नहीं; बल्कि, जब काफी उजेला था, तब भी वह किताब इसी तरह पड़ी हुई थी । वास्तवमें, उसी

दिनसे वह काम-धन्धेपर भी नहीं गया,—घरसे बाहर तक नहीं निकला। पिछले कई दिनोंसे उसके मनमें सिर्फ एक ही बात बार बार चक्कर काट रही है—एकके निकट वह बिलकुल ही अस्पृश्य हो गया ! घृणा और अशुचिता इतनी दूर तक पहुँच गई कि उसे छूने-मात्रसे भी दूसरेको मुँहका पान तक थूक देना पड़ता है !

सहसा उसकी चिन्ता-धारा रुक गई। दरवाजेके पास आहट सुनकर उसने उधर देखकर पूछा—कौन है वहाँ ?

“ मैं हूँ, संध्या, ” कहती हुई संध्या दरवाजा खोलकर चौखटके सहारे खड़ी हो गई।

अरुण व्यस्त होकर टेबिलसे पैर उतारके उठ खड़ा हुआ और अत्यन्त विस्मयकं स्वरमें पूछने लगा—तुम यहाँ ? ऐसे वक्तपर ? आओ, भीतर आकर बैठो।

संध्याने कहा—मेरे पास बैठनेका वक्त नहीं है। मैं तालाबमें हाथ-पैर धोने गई थी, छिपकर यहाँ चली आई हूँ। हम लोगोंकी एक बात रखोगे अरुण भइया ?

अरुणने अधिकतर विस्मित होकर कहा—बात ! तुम लोगोंकी ! जरूर रखूँगा, संध्या।

सो मैं जानती थी—कहकर संध्या क्षण-भर चुप रहकर फिर बोली—बाबूजीसे मैंने सुना है कि उस दिनसे तुम कामपर भी नहीं गये, घरसे निकले तक नहीं,—क्यों, भला सुनूँ तो सही ?

“ मेरी तबीयत ठीक नहीं। ”

संध्याने कहा—ठीक न रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं; पर, यह बात नहीं है। ऐसा हांता तो बाबूजी सबसे पहले यही बात कहते।

अरुण चुप रहा। संध्या खुद भी कुछ देरतक स्थिर रहकर फिर बोली—कारण मैं जानती हूँ अरुण भइया। फिर भी, हमारे घर अब तुम कभी मत जाना।

अरुणने धीरेसे गरदन हिलाकर कहा—नहीं, सिर्फ एक तुम्हारे ही घरकी बात नहीं,—मैं तो दिन-रात यही सोच रहा हूँ कि गाँवको ही छोड़कर किसी ऐसी जगह जा बसूँ जहाँ मनुष्य मनुष्यको, बिना दोषके इतना हीन,—इतना लाञ्छित, नहीं करते हों।

संध्याने मुँह उठाकर कहा—जन्मभूमि छोड़कर चले जाओगे ?

अरुणने कहा—जन्मभूमि ही तो मुझे छोड़ रही है, संध्या । आज तुम्हारे लिए भी मैं ऐसा पातकी हो गया कि तुम्हें भी मुँहका पान थूक देना पड़ा ! ऐसी घृणाको सहते हुए भी क्या तुम मुझे इसी गाँवमें रहनेको कहती हो ?

संध्या निरुत्तर होकर नीचेको निगाह किये खड़ी रही । अरुणने कहा—आचार-के नामपर यह चिरागत संस्कार तुम्हारे मनको शायद स्पर्श तक नहीं करता; परन्तु, जहाँ करता है, वहाँ मनुष्यके हाथसे मनुष्यकी यह लांछना उसको कहाँ तक वेदनासे बंध सकती है, इस बातका एक दिन मुझे ही इस तरह अनुभव करना पड़ेगा, यह मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था, संध्या ।

संध्या कुछ देर मौन रहकर बोली—परन्तु, इस लांछनाको क्या तुम खुद ही नहीं खींच लाये हो, अरुण भइया ?

अरुणने कहा—क्या जानें । पर अच्छा, संध्या, प्रायश्चित्त करनेसे क्या इसका कोई उपाय हो सकता है, तुम बतला सकती हो ?

संध्याने कहा—हो सकता है; परन्तु, एक दिन आत्म-सम्मान नष्ट होनेके डरसे तुम स्वयं ही राजी नहीं हुए,—फिर अगर खुद ही उसे विसर्जन कर दो, तो मैं कहूँगी अरुण भइया, कि तुम और कुछ भी करो, पर यहाँ मत रहो ।

अरुणने कहा—मगर, तुम्हारी घृणा तो मुझे वहाँ भी टिकने न देगी !

“ पर इससे भी तुम्हारा क्या बनता-बिगड़ता है ? ”

अरुणने कहा—संध्या, इस बातको तुम भी अपनी ज़बानसे कह सर्की !

संध्याने कहा—तुमने तो मुझे अपने लज्जा,—अपने संकोच,—के आवरण तकको न रखने दिया, अरुण भइया ! आभाससे, इशारेसे, तुम्हें कितनी बार जताया कि ऐसा हरगिज नहीं हो सकता । फिर भी, तुम्हारी भिक्षाकी ज़बरदस्ती किसी भी तरह खतम ही नहीं होना चाहती थी । बाबूजी राजी हो सकते हैं, मा भी भूल सकती हैं; पर, मैं तो नहीं भूल सकती कि मैं कितने बड़े ब्राह्मणकी लड़की हूँ ।

अरुणने आश्चर्यसे हतबुद्धि होकर कहा—और मैं ?

संध्याने कहा—तुम भी मेरी अपनी जातिके हो,—मगर फिर भी शेर और बिल्ली तो एक नहीं हैं, अरुण भइया ?

परन्तु, बात कह डालनेके बाद वह स्वयं ही मानो मन-ही-मन सिहर उठी ।

अरुण फिर कुछ नहीं बोला; उसने सिर्फ संध्याके चेहरेपरसे अपनी विस्मित और व्यथित आँखें हटा लीं ।

संध्याने ज़बरन जरा हँसनेकी कोशिश करके कहा—तुम कहीं भी क्यों न चले जाओ, अरुण भइया, मगर मुझे सहजमें नहीं भूल सकोगे । बहुत दिनों तक तुम्हें याद रहेगी,—बार बार इतना अपमान तुम्हारा किसीने नहीं किया ।

अरुणने मुँह उठाकर पूछा—तुम जिस कामके लिए आई थीं, सो तो अभी तक कहा ही नहीं ।

संध्या प्रत्युत्तरमें सिर्फ जरा हँस दी । क्षण-भर चुप रहकर बोली—दुनियामें आश्रयोंका कोई अन्त नहीं ।

इसके बाद और कुछ कहना चाहती थी; पर, सहसा रुककर बोली—लेकिन मेरी इज्जत तुम न रखोगे तो और कोई नहीं रख सकता,—इस बातका तुम्हें विश्वास होता है, अरुण भइया ?

अरुण चुपचाप सिर्फ देखता रहा ।

संध्याने कहा—एककौड़ी दूलेकी विधवा स्त्री और उसकी लड़कीको एक-कौड़ीके बापने घरसे निकाल दिया है; लेकिन, मेरे बाबूजी उन्हें ले आये थे; और, मैंने उन्हें आश्रय दिया था ।

“कहाँ ?”

“अपने पुराने मवेशीखानेमें । मगर, ब्राह्मणोंके मुहल्लेमें वे रह नहीं सकतीं ।”

अरुणने आश्चर्यके पूछा—क्यों ?

संध्याने कहा—क्यों क्या, दूले जो ठहरें । वे हमारे तालाबके घाटसे पानी भरती हैं, रास्तेपर बकरीको माँड़ पिलाती हैं,—गोलोक नानाका गलतीसे कहीं पैर न पड़ जाय,—माने प्रतिज्ञा की है कि कल संबरे ही उन्हें झाड़ू मारके निकाल बाहर करेंगीं, तब नहायेंगीं । तुम उन्हें जगह दे दो न, अरुण भइया । उनके कुछ भी नहीं है,—बेचारी बिलकुल ही निराश्रय हैं ।

अरुणने कहा—अच्छी बात है, पर कहाँ जगह दूँ ?

संध्याने कहा—सो मैं नहीं जानती, जहाँ भी हो । तुम्हारे सिवा और किससे मैं कहने जाऊँ ?

अरुणने जरा सोचकर कहा—मेरा उड़िया माली देश गया है,—उसकी कोठरीमें क्या वे रह सकेंगीं ? न हो तो, थोड़ी-बहुत मरम्मत करा दूँगा ।

संध्या मुँह उठाकर बात न कर सकी, उसने सिर्फ नीचेको निगाह किये हुए गरदन हिलाकर अपनी सम्मति जाहिर की।

अरुणने कहा—तो, उन्हें जाकर भेज देना। माली आयेगा तब और-कुछ बन्दोबस्त कर दूँगा।

संध्या इसका भी जवाब न दे सकी। उसी तरह नीची निगाह किये शायद अपनेको सम्हालनेकी कोशिश करने लगी; उसके बाद धीरे-धीरे बोली—इस समय मेरे मुँहमें पान भी नहीं है, और हाथ-पैर धोने भी आई हूँ। इस समय, तुम्हें प्रणाम करके जरा पाँवकी धूल लेती जाऊँ।

इतना कहकर उसने घुटने टेककर नमस्कार किया और उसके पाँवकी धूल माथेसे लगाकर वह जल्दी जल्दी कदम रखती हुई वहाँसे अदृश्य हो गई।

अरुणने उसे वापस बुलाने या और कुछ पूछनेकी चेष्टा नहीं की; सिर्फ, उसी तरफ देखता हुआ वह स्तब्ध होकर बैठा रहा।



## ७

**श**ायद दो दिन बादकी बात है, जगद्धात्री अपने तालाबसे नहाकर घर लौट रही थी, रास्तेमें रासमणिसे भेंट हो गई। उसका सारा-का-सारा चेहरा उत्तेजना और आग्रहके आधिक्यसे रोना-रोना-सा हो आया था। पास आकर वह अश्रु-गद्गद कंठसे बोली—जगो, बिटिया मेरी, तेरी उस पगली लड़कीने आखिर क्या ऐसी ही तपस्या की थी! ऐं, यह तो स्वप्नके भी बाहरकी बात है!

जगद्धात्री कुछ भी न समझ सकी; परन्तु, बुढ़ियाके मुँहसे लड़कीका नाम सुनते ही मन-ही-मन वह डर गई। उत्कंठित होकर पूछा—क्या हुआ मौसी? क्या किया संध्याने?

रासमणिने कहा—जो किया है, सो दुनियामें किस लड़कीने कब किया है, सुनूँ तो सही? जा, भीगे कपड़ोंसे, भीगे बालोंसे जाकर श्रीधर भगवानको साष्टांग नमस्कार कर आ। पंचानन और विशालाक्षीके थानमें पूजा चढ़वा दे। पर मुझे, बेटी, इष्ट-कवच गलेमें धारण करनेके लिए एक पतली-सी सोनेकी गोठ बनवा देनी हांगी, सो मैं पहलेसे ही कहे देती हूँ।

जगद्धात्रीने व्याकुल होकर कहा—क्या हुआ है, मौसी ! खुलासा बिना कहे मैं समझूँ कैसे ?

रासमणिने जरा हँसकर कहा—खुलासा कहना होगा ? तो कहती हूँ, सुन । तुम महतारी-बिटियाने बहुत पुण्य किया है, नहीं तो ऐसा कभी नहीं होता । तू सोच-सोचके मरी जा रही थी, लड़कीका ब्याह कैसे होगा,—अब जा,—एकदम राजाकी सास बनकर बैठी रह ।

बात सुनकर जगद्धात्री दोनों आँखें कपालपर चढ़ाकर देखती रह गई ।

रासमणिने सदय कंठसे कहा—तेरे अकेलेका दोष नहीं है जग्गो, सुनकर मैं भी इसी तरह ताकती रह गई थी । मालूम हुआ, शायद सोते-सोते सपना देख रही हूँ ।

जगद्धात्रीने कहा—खुलासा बताओ न मौसी, क्या हुआ है ? जमीन-आसमान सोचते सोचते मेरा तो हाल बेहाल हुआ जा रहा है ।

रासमणिने तब जगद्धात्रीका बायाँ हाथ अपनी मुठ्ठीमें लेते हुए कानके पास मुँह लाकर चुपकेसे कहा, “बातको छिपाये रखना बेटी ! मारे खुशीके अभी तुरंत ही इधर-उधर कह मत डालना,—नहीं तो कोई भाँजी मार देगा । मेरे सिवा चटर्जी-भइया और किसीपर विश्वास नहीं करते; इसीसे, सबेरे ही बुलाकर मुझसे कहा, ‘ रासू, जगद्धात्रीको खबर पहुँचा दो जाकर । उसे अपनी लड़कीके लिए अब चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं । मेरे ही हाथमें सौंपकर एकदम राजाकी सास बनकर पैरपर पैर रखके अपने घर बैठी रहे । मनमें सोचा, मेरी भी तो वैकुण्ठपुरी सूनी है, खानेको दौड़ती है,—लड़का भी बरबाद हुआ जा रहा है—खैर, एक काममें दो काम सध जायेंगे । एक ब्राह्मणकी कुल-रक्षा भी होगी और गाँवकी लड़की गाँव-हीमें रह जायगी । उनके भी सिर्फ एक वही लड़की है,—’ ”

परन्तु, अपनी बातको वह, राजाकी भावी सासके मुँहकी ओर देखकर, खतम न कर सकी । सुनते सुनते जगद्धात्रीकी हालत ऐसी हो गई जैसे काठ मार गया हो ।

रासमणि चंचल होकर कहने लगी—क्या हुआ री जग्गो ?

जगद्धात्रीने अपनेको सम्हाल लिया और एक गहसी साँस लेकर कहा—नहीं मौसी, गोलोक मामाने तुमसे हँसीमें कहा है ।

“हँसी क्या री ? मेरी इतनी उमर हो चुकी; हँसी किसे कहते हैं, मैं नहीं जानती ! और फिर, भाई-बहनमें हँसी ?”

जगद्धात्रीने कहा—हँसी तो है ही मौसी । यह भी कहीं हो सकता है ?

रासमणि जरा हँस दी । बोली—सो तो सच है बेटी, मुझे भी पहले ऐसा ही मालूम हुआ था । मालूम हुआ, शायद सपना ही देखा होगा । लेकिन, बादमें ही समझी, कि नहीं, जाग रही हूँ । लड़कीकी तकदीर ज़रूर है ! नहीं तो, कुलीन घरानेकी लड़कीके भाग्यमें ऐसा कभी किसीने देखा है या सुना है ! मैं असीस देती हूँ, अहिवाती बनी रहे; लेकिन, मैंने जो जो कहा है, आज ही करना जाकर बेटी । और, बात पाँच कानों तक फैलने न पावे । पहले ही अच्छे-अच्छेमें आशीर्वाद \* हो जाने दे ।

जगद्धात्रीके मुँहसे कुछ बात नहीं निकली, वह चुपचाप खड़ी रही ।

रासमणिने फिर कहा—इसी अगले अगहनके बाद ही,—सुनते हैं, फिर साल-भर तक सहालग नहीं है । मेरे चटर्जी भइयाकी इच्छा—

इतना कहकर वह मुसकरा दी, फिर बोली—और, हो भी क्यों नहीं, बता ? लड़की जो बिलकुल लछमीकी-सी प्रतिमा है ! देखनेसे मुनियों तकके मन बिचल जायँ, फिर गोलोककी कौन चलाई !

इतना कहकर हँसते हुए उसने उँगलीसे जगद्धात्रीकी बाँह मसककर कहा—जा बेटी, भीगे कपड़े पहने अब ज्यादा खड़ी मत रह,—उस जून फिर आऊँगी, बहुत बातें करनी हैं ।

इतनी बात करके, फिर, वह जरा भी समय नष्ट न करके, सीधी घरकी तरफ चल दी ।

जगद्धात्री लगभग डगमगाते पैरोंसे जैसे-तैसे घर पहुँची; और, ठाकुरद्वारेके बरामदेमें धप-से पानीका घड़ा रखकर भीगे कपड़ोंसे वहीं बैठ गई । उसकी दोनों आँखोंमें आँसू भर आये ।

संध्या उसकी एकमात्र सन्तान । उसकी बड़ी लाइली संध्या रूप और गुणमें सचमुच ही लक्ष्मीकी प्रतिमा है । पर, उस प्रतिमाके विसर्जनका आह्वान आया गोलोक चटर्जीके नरक-कुंडसे । जो गोलोक लड़कीके नानासे भी उमरमें बड़े हैं, उन्हींके हाथ लड़की सौंपनेसे तो, अच्छा है, वह मर जाय । यह बात माकी छातीके भीतर आगकी तरह दहकने लगी; परन्तु, मुँहसे वह ‘नहीं’

\* कन्याको देखकर सगाई पक्की होनेका संस्कार—विशेष ।

शब्द भी उच्चारण न कर सकी । वह स्वयं भी तो ब्राह्मण-कुलीनके घरकी लड़की ठहरी,—समाज और परिवारमें यह कोई विचित्र बात नहीं,—इससे भी बहुत ज्यादा दुर्गति उसने स्वयं अपनी आँखों देखी है,—इसीलिए, अपनी लड़कीकी बात याद करके भीतरसे उसका हृदय भक-भक जलते रहने-पर भी, उसे बुझानेके लिए, एक बूँद पानी उसे चारों तरफ कहीं ढूँढ़े न मिला । अकेली बैठकर वह चुपचाप केवल आँसू पोंछने लगी; और, बार बार यही सोचने लगी कि बहुत ही जल्द शायद यही बात एक दिन सत्य हो जायगी,—हो सकता है कि, उस बीमत्स आदमीकी दुर्जय वासनाको रोकनेके लिए कोई उपाय ही उसे ढूँढ़े न मिले । रह-रहकर उस दिनके सकौतुक रहस्यालापकी बातें ही उसे बार बार याद आने लगीं,—उनमें इतना ज़हर छिपा हुआ था, तब इस बातका सन्देह कौन कर सकता था ?

बाहरके दरवाजेसे संध्या एक चिठी पढ़ती हुई एक एक डग रखती हुई भीतर आ रही थी । पढ़ना शायद ख़तम न हुआ था, किसी भी तरफ बिना देखे ही आवाज़ दी—मा, मा री !

जगद्धात्रीने झटपट आँसू पोंछकर जवाब दिया—क्यों बिटिया ?

माके भारी गलेकी आवाज़से संध्याने चौंककर सिर उठाया, और धीरेसे पास आकर पूछा—क्या हुआ है मा ?

जगद्धात्रीने लड़कीकी तीक्ष्ण दृष्टिकी तरफसे अपना मुँह फेर लिया, बोली—कुछ भी तो नहीं, बेटी ।

संध्या और भी नज़दीक आ गई और अपने आँचलसे माके आँसू जतनसे पोंछती हुई करुण कंठसे पूछने लगी—बाबूजीने क्या और कुछ कर डाला है मा ?

जगद्धात्रीने सिर्फ कहा—नहीं ।

लड़कीको विश्वास न हुआ । आहिस्तेसे वह जननीके पास बैठकर बोली—संसारमें सभी बातें आदमीके मनकी-सी नहीं होतीं, मा । सभी तो भेरे बाबूजीको सनकी-महाराज कहा करते हैं, तुम भी क्यों नहीं उन्हें वैसा ही समझ लेतीं ?

जगद्धात्रीने कहा—वे समझ सकते हैं, उसमें उनका कोई नुकसान नहीं,—लेकिन, मुझ जैसा तो किसीको जलना-भुनना नहीं पड़ता, संध्या ।

यह जलना-भुनना क्या है और उसके लिए किसको कहाँ कैसी यंत्रणा सहनी पड़ती है, यह बात संध्याकी समझमें कभी न आई, और न आज आई।

इसलिए, अपने निरीह, निर्विरोधी, परदुःखकातर, अल्पबुद्धि पिताके दुःखसे उसका चित्त स्नेह और समवेदनासे परिपूर्ण हो उठा; और, दोनों आँखें डबडबा आईं। बोली—अगर मेरे वशकी बात होती मा, तो, बाबूजीको लेकर मैं वन-जंगल पहाड़-पर्वत या ऐसी किसी जगह चली जाती, जहाँ दुनियाके किसीको भी उनके लिए जलना-भुनना न पड़ता।

जगद्धात्रीने जल्दीसे अपनी लड़कीकी ठोड़ीपर हाथ लगाकर चूम लिया और स्नेहके साथ कहा—भगवान ऐसा न करें। पर, मैं तो जैसे तेरी सौतेली मा हूँ। उनसे आधा भी तू अगर मुझे प्यार करती, संध्या !

संध्याने कहा—तुमसे क्या प्यार नहीं करती, मा ?

माने कहा—पर उनके लिए तो तू अपने प्राण दिये देती है,—पाँवमें कंकड़ भी न गड़ने पावे, ऐसा तेरा भाव है। तू अच्छी तरह जानती है कि उनकी दवासे कुछ भी नहीं होता; फिर भी, तू जान देने बैठी है; मगर, और किसीकी दवा न खायगी,—कहीं उन्हें शर्मिन्दा न होना पड़े। यह सब क्या मैं समझती नहीं संध्या ?

संध्याने दाँनों हाथोंसे माके गलेसे लिपटकर हँसते हुए कहा—हाँ, सो तो है ही। बाबूजी सरीखा डाक्टर क्या और कहीं है भी ?

माने कहा—नहीं है, यह बात सच है।

संध्याने नाराज होकर कहा—जाओ, रहनें दां, तुम्हें हँसी न करनी होगी। आदमीकी बीमारी एक ही दिनमें थोड़े ही अच्छी हो जाती है। मैं तो पहलेसे बहुत-कुछ अच्छी हो गई हूँ !

इतना कहकर चटसे प्रसंग बदलकर बोली—दूले-बहू चली गई मा। अच्छा हुआ, बला टली !

“कब गई ?”

“मालूम नहीं। शायद, तड़के ही उठके चली गई है।”

परन्तु, उसकी कृत्रिम उदासीनता माको भुलावा न दे सकी। माने पूछा—कहाँ चली गई, तू जानती है ?

संध्याने उसी तरह उदासीन-भावसे कहा—शायद अरुण-भइयाके उस घरके

पीछेवाले बगीचेमें । उनके उड़िया-मालीकी एक फूटी टूटी-फूटी कोठरी थी न ? शायद उसीमें ।

जगद्धात्रीने पूछा—अरुणके पास किसने भेजा उन्हें ? तूने भेजा होगा ?

संध्या भीतर-ही-भीतर बड़ी अड़चनमें पड़ गई । फिर भी, किसी तरह सीधा झूठ बचाती हुई बोली—अरुण-भइयाके पास मैं क्यों उन्हें भिजवाने चली, मा । मैंने किसीको किसीके पास नहीं भेजा ।

इतना कहकर उसने इस अत्यन्त भेदे प्रसंगको झटपट उलटकर हाथकी चिड़ी सामने रख दी; बोली—असल बात थी, सो तो तुम्हें बताई ही नहीं अभी तक, मा । मेरी संन्यासिन-दादी अबकी काशीसे सचमुच ही आयेंगी, लिखा है उन्होंने । वे तो कभी झूठ बोलती नहीं मा,—अबकी शायद, उनकी दया हो गई—

जगद्धात्रीने उत्सुक होकर पूछा—माकी चिड़ी है ? कब आनेकी लिखी है ?

जगद्धात्रीकी काशी-वासिनी संन्यासिनी सासु काशी छोड़कर एक दिनके लिए भी कहीं जाना नहीं चाहती थीं । अबकी बार जगद्धात्रीने उन्हें बहुत बहुत आग्रहसे लिखा था कि उनकी इकलौती पोतीके ब्याहमें जरूर आना पड़ेगा और कन्या-दान देना होगा । सासु दान देनेके लिए तो किसी भी तरह राजी नहीं हुईं; पर, यथासमय उपस्थित होनेके लिए लिख भेजा है ।

संध्या अपने ब्याहके जिक्रसे शरमाकर बोली—अपनी चिड़ीका जवाब तुम ही पढ़ो न मा ।

कहते हुए संध्याने कागज मांकें पास रख दिया, और सहसा व्यग्र होकर बोली—अरे मा, तुम अभीतक भीगे ही कपड़े पहने हो,—जाऊँ, तुम्हारी सूखी धोती दौड़के ले आऊँ ।

इतना कहकर वह जल्दीसे चली गई ।

जगद्धात्रीने चिड़ी माथेसे लगाकर कहा—ब्रह्मपर इतने दिनोंबाद अब सचमुच ही दया हुई मा !

कहती हुई वह भी धीरेसे उठकर ठाकुरद्वारेकी ओर चलने लगी,—इतनेमें सहसा उसके पति शोर-गुल मचाते हुए घर आ पहुँचे । वह कह रहे थे—दो दिनसे गया नहीं, बस, चटसे हाइपोकाइट्रिया डेवलप हो गया !

पतिके साथ जगद्धात्रीकी विशेष बातचीत न होती थी; परन्तु, उनकी इस

अति-व्यस्तता और खासकर दोपहरके बारह बजेके पहले आज अकस्मात् घर लौट आनेसे मन-ही-मन उसे कुछ आश्चर्य हुआ। मुँह उठाकर श्रान्त कण्ठसे पूछा—किसको क्या हो गया ?

प्रिय बाबूने कहा—अरुणको। ठीक हाइपोकोण्ड्रिया है, मैं जो डायगनोस कर दूँगा, किसीके बापकी मजाल है जो काट जाय ? भला बतावे विपिन इसके मानी ?

और कोई समय होता तो शायद जगद्धात्री दूसरी बात न करती; परन्तु, अरुणका नाम सुनकर जरा कुछ उद्भिन्न हो उठी, बोली—क्या हुआ है अरुणको ?

प्रिय बाबूने कहा—कहा तो अभी। विपिन ही नहीं समझ सकता, तो तुम क्या समझोगी ! आखिर वह थोड़ी-बहुत प्रैक्टिस-फ्रैक्टिस तो करता ही है। चीज-वस्तु बाँधी जा रही है,—घर-द्वार जमीन-जायदाद सब बेची जायगी,—हाराधन कुण्डुको खबर दे दी गई है,—भाग्यसे मैं पहुँच गया ! जिधर न गया, जिधर एक दिन निगाह चूकी, कि एक न एक अनहोनी बात हुई धरी है। इस तरह तो मेरा जीना दुश्वार हो गया भइया !—संध्या ! कहाँ चली अब ? चट-से ‘मटिरिया-मेडिका’ तो उठा ला, बेटी। एक रेमिडी सिलेक्ट करके उसे दवा दे आऊँ।

“आई बाबूजी,” कहकर एक मोटी किताब हाथमें लिये हुए संध्या पिताके पास आ खड़ी हुई।

जगद्धात्रीने नाराज होकर कहा—पैरों पड़ती हूँ तुम्हारे, साफ़-साफ़ बताओ, क्या हुआ है अरुणको ?

प्रिय बाबू चौंक पड़े, थोड़ी देर बाद बोले—ओहो, हाइपो,—मानसिक रोग। आज-ही-कलके अन्दर वह देश छोड़कर चला जाना चाहता है,—हारान कुण्डुको सब बेच-बाचकर। सो नहीं होनेका, हरगिज़ नहीं,—यह सब मैं नहीं हाने दूँगा। एक बूंद दो-सौ पावरकी—

संध्याका मुँह फक पड़ गया, नीचेको निगाह किये चुप-चाप खड़ी रही। जगद्धात्रीने व्याकुल कण्ठसे कहा—घर-द्वार बेचकर चला जायगा अरुण ? वह क्या पागल हो गया है ?

प्रिय बाबूने सामनेको हाथ उठाकर कहा—उफ़, नहीं भाई, सो बात नहीं। बिलकुल पूरा हाइपोकोण्ड्रिया है ! पागल नहीं हुआ,—उसको तो इन्सैनिटी

कहते हैं। उसकी अलग दवा है। चिपिन होता तो यही कह बैठता, और क्या, मगर—

जगद्धात्रीने कनखीस एक बार लड़कीके मुँहकी ओर देख लिया, और पतिकी अनर्गल वक्तृताको सहसा दृढ़ कण्ठसे रोककर अत्यन्त स्पष्टताके साथ कहा—  
तुम्हारी निजी बातें सुननेकी मुझे फुरसत नहीं। अरुण क्या देश छोड़कर चला जाना चाहता है ?

प्रिय बाबूने कहा—चाहता है ? जानकी बिलकुल तैयारियाँ भी हाँ चुकीं। सिर्फ मैंने जाकर—

“ फिर मैंने ? अरुण कब जायगा ? ”

प्रिय बाबू घबरा-से गये, बोले—कब ? आज भी जा सकता है, कल भी जा सकता है, सिर्फ हारान कुण्डू नालायक—

जगद्धात्रीने पूछा—हारान कुण्डूने सब-कुछ खरीद लेनेके लिए कह दिया है ?

प्रिय बाबूने कहा—जरूर, जरूर ! वह पाजी तो यही चाहता है। पानीके मोल मिले तो—

जगद्धात्रीने फिर प्रश्न किया—इस बातका गाँवका और भी कोई जानता है ?

प्रिय बाबूने कहा—कोई नहीं, कानी चिरैया तक नहीं। सिर्फ मैं भाग्यसे—

जगद्धात्रीने कहा—तुम्हारे भाग्यकी बात जाननेकी मुझे गरज नहीं। तुम एक बार उसे यहाँ बुला ला सकते हो ? कहना, तुम्हारी चाचीने अभी तुरत बुलाया है, बहुत जरूरी काम है।

संध्याने अब तक एक भी बात न कही थी, वह चुपचाप खड़ी सुन रही थी। अब उसने आँख उठाकर देखा। उसका चेहरा एकदम पीला पड़ गया था, बात कहते हुए उसके ओठ तक काँप उठे; परन्तु, इसके बाद ही उसने दृढ़ कंठसे कहा—मा, उन्हें तुम बार बार क्यों अपमानित करना चाहती हो ? तुम्हारा उन्होंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है, सुनूँ तो भला ?

जगद्धात्रीको बहुत ही आश्चर्य हुआ, उसने पूछा—कौन उसका अपमान करना चाहता है, संध्या ?

संध्याने कहा—नहीं, तुम इस मकानमें उन्हें हरगिज़ नहीं बुला सकतीं।

जगद्धात्रीने कहा—बुलाकर क्या दो अच्छी बातें कहनेमें भी दोष है ?

संध्याने कहा—अच्छी हों चाहे बुरी, वे रहें या चले जायँ, घर-दोर बेचें चाहे न बेचें,—हमारे साथ उनका सम्बन्ध क्या है जो तुम कहने जाओगी ? इस मकानमें अगर तुमने उन्हें बुलाया मा, तो मैं तुम्हारी ही कसम खाकर कहती हूँ, उस तालाबमें जाकर डूब मरूँगी ।

कहत कहते ही वह जल्दीसे वहाँसे चली गई, माके जवाबकी प्रतीक्षा तक न की ।

दुःसह विस्मयसे जगद्धात्री दोनों आँखें फाड़कर खड़ी देखती रह गई । सिर्फ प्रिय बाबू चिल्लाकर कहने लगे—अरे, किताब तो देती जाती, संध्या ! अबेर हो गई है, एक रेमिडी सिलेक्ट कर डाँटू ।

संध्या लौट आई और हाथकी किताब पिताके पैरोंके पास रखकर चली गई । वे वहीं बैठकर दवा चुननेमें मशगूल हो गये ।

जगद्धात्री कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही; फिर, पतिको लक्ष्य करके बोली—तुमने क्या लड़कीका ब्याह न करना तय कर लिया है ?

प्रिय बाबूने अपना काम करते हुए ही जवाब दिया—कलूँगा क्यों नहीं ? जरूर कलूँगा ।

“ कब करोगे ? आखिर कुछका कुछ हो जायगा, तब ? ”

“ हूँ । ”

जगद्धात्री क्षण-भर स्थिर रहकर फिर बोली—रसिकपुर चले न जाओ एक दिन ?

प्रिय बाबूने खुले हुए पन्नेको एक जगह उँगलीसे दबाकर मुँह उठाकर देखा; बोले—रसिकपुर ? किसको क्या हुआ है ? कोई खबर दे गया है क्या ? कब दे गया ?

जगद्धात्रीने एक उसास लेकर कहा—जयराम मुखर्जीके नातीके साथ जो ब्याहकी बात छिड़ी थी, जाओ न, जाकर एक बार लड़केको देख आओ !

प्रिय बाबूने कहा—मगर, जाऊँ कब ? देख तो रही हो, एक जून न रहनेपर क्या हाल होता है । अरुणकी यह दशा है, और फिर चटर्जी साहबका आदमी खबर दे गया है, उनकी साली बहुत बीमार है ।

जगद्धात्रीने कुछ आश्चर्यके साथ पूछा—कौन, शानदा बीमार है ? क्या हो गया उसे ?

प्रियनाथने कहा—अम्ल ! अम्ल ! खानेकी गड़बड़ीसे अजीर्ण रोग । सिर्फ जी मचलाता है,—अरुणकं यहाँसे लौटकर जाऊँगा, एक ही बूँद—

जगद्धात्रीने कहा—उनके यहाँ दवा देनेवाले बहुत हैं । तुम्हारे पैरों पड़ती हैं, एक बार चले जाओ रसिकपुर । लड़केको एक बार देख आओ, फिर आकर चाहे जा करो, लड़कीके ब्याहका कुछ उपाय करो ।

गृहिणीके अश्रु-विकृत कंठ-स्वरने शायद प्रिय बाबूका कथञ्चित् प्रकृतिस्थ कर दिया । बोले—लेकिन, लड़का तो सुनते हैं, बहुत ही आवारा है ! हरदम नशेमें—

जगद्धात्री अब धीरज न रख सकी । सहसा रो पड़ी, बोली—करन दो नशा-पानी, होने दो आवारा, तो भी लड़की दो-चार दिन सुहाग-सिन्दूर लगा सकेगी । तुम और क्या थे ? तुम्हारे हाथ मेरे बाप-मा अगर अपनी लड़की सौंप सके, तो फिर तुम क्यों नहीं सौंप सकते ?

इतना कहकर वह आँचलसे आँखें पोंछती हुई जल्दीसे भीतर चली गई ।

प्रिय बाबू दंग रहकर कुछ देर तक देखते रह गये, फिर किताब बन्द करके एक गहरी उसास लेकर बोले—दो दो सख्त बीमार मरीज हाथमें हैं,—इस तरह करनेसे कहीं रेमिडी सिलेक्ट की जा सकती है !

कहते हुए फिर उन्होंने एक गहरी साँस ली, और किताब बगलमें दबाकर वे धीरे धीरे बाहर निकल गये ।



**स्नान**, पूजा-पाठ और यथाविहित सात्त्विक जल-पानादि सम्पन्न करके

मूर्तिमान् ब्रह्मण्यकी भाँति गोलोक चटर्जी महाशय धीरे धीरे नीचे उतरे, और सम्भवतः सीधे बाहर जानेको तैयार थे, कि सहसा कुछ याद आ जानेसे बगलकें बरामंदसे घूमते हुए भंडार-घरके सामने पहुँच गये और अत्यन्त अकस्मात् उद्वेगसे परिपूर्ण होकर बोल उठे—ऐं, यह सब क्या हो रहा है, बताओ तो, छोटी मालिकिन ! खराब तबीयत है, ऐसेमें घर-गृहस्थीका काम खाक-धूल न किया करो तो कौन-सा हर्ज हो जायगा ? मैं तो कहता हूँ !—अच्छा, देह पहले है कि काम पहले ?

ज्ञानदा हँसियासे तरकारी बना रही थी, बनाती ही रही। उनकी खड़ाऊँकी विकट खटखट आवाज़ भी उसके कानोंतक नहीं पहुँची, और न उनका उत्कंठित अनुयोग ही उसने सुना।

गोलोकने क्षण-भर चुप रहकर फिर कहा—बात क्या है? आज संवरे तबीयत कैसी रही?

ज्ञानदाने मुँह ऊपर न उठाया, हाथके बैंगनकी तरफ ही आँखें लगाये गरदन हिलाकर जता दिया—अच्छी रही।

गोलोकका बहुत ही तसल्ली हुई, बोले—अच्छी बात है, अच्छी बात है। मैं तो जानता हूँ न, प्रियनाथ है तो सनकी आदमी, पर दवा देनेमें धन्वन्तरि है। लेकिन, जैसे जैसे वह कहता जाय, ठीक समयपर वैसे ही पीती जाना। लापरवाही करनेसे काम न चलेगा, हाँ, सं कहे जाता हूँ!

ज्ञानदाने इतनी बातोंमेंसे किसीका भी जवाब नहीं दिया, नीचोंका निगाह किये अपना काम करती रही।

गोलोक कुछ देरतक उसकी तरफ देखते रहे, फिर बोले—प्रियनाथसे खास तौरसे कह दिया है, दोनों जून आकर देख जाया करेगा,—संवरे आया था न?

ज्ञानदाने उसी तरह नीचोंको मुँह किये सिर हिलाकर जवाब दिया—हाँ।

गोलोक खुश होकर बोले—आयेगा क्यों नहीं! आयेगा क्यों नहीं! वह तो मेरा पूरा अनुगत है। पर दइया रौंड़ कहाँ गई? वह दवा दे जायगा और तुम इधर मेहनत करते करते शरीर बिगाड़ती रहोगी, यह मैं नहीं हान दूँगा! मैं पूछता हूँ, सब गये कहाँ? रहने दो सब यों ही पड़ा! जाओ, ऊपर जाकर जरा आराम करो।—मधुसूदन! तुम्हारा ही भरोसा है!

इतना कहकर गोलोक परका और अपना लौकिक और पारलौकिक कर्तव्य फिलहाल समाप्त करके बाहर चलनेकी तैयारी करने लगे।

उनकी खड़ाऊँकी आवाज़से चकित होकर इतनी देर बाद अब ज्ञानदाने मुँह उठाकर देखा। आज उसके चेहरेपर उस दिनकी वह प्रसन्न हँसी नहीं थी, वह चिन्ता और विषादके काल बादलोंसे आच्छन्न हो रही थी। आँखें सुख थीं, पलकोंके किनारे आँसुओंकी झलक मानो अब तक विद्यमान थी,—अपनी उसी सजल दृष्टिको गोलोकके मुँहकी ओर स्थिर करके अकस्मात् रुँधे हुए गलेसे

पूछ बैठी—तुम क्या प्रिय बाबूकी लड़की संध्यासे ब्याह करना चाहते हो ? मुझे धोखा न दो, सच बताओ ।

गोलोक घबरा-से गये, सहसा कुछ जवाब न दे सके; परन्तु, दूसरे ही क्षण बोल उठे—मैं ?—संध्याके साथ ? नहीं तो । किसने कहा ?

ज्ञानदाने कहा—काई कहे ! रासू जीजीको तुमने उसकी माके पास भेजा था ? अगले अगहनमें ही ब्याह ठीक हो गया है ? भगवानकी दुहाई है, सच्ची बात कहना !

गोलोकने अस्फुट तर्जनके साथ डाँटते हुए कहा—रासी बाम्हनी कह गई है ? अच्छा, देखता हूँ उसे ! मैं—

ज्ञानदा कहने लगी—तो फिर क्यों तुमने मेरा यह सर्वनाश किया ? मुँह दिखाने,—कहीं खड़े होने तककी भी मेरे लिए जगह नहीं—

कहते कहते उसका विकृत कण्ठ एकसाथ छाती-फाड़ रोनेकी सहस्र धाराओंमें फट पड़ा ।

गोलोक व्याकुल हो उठे । चारों ओर भयभीत दृष्टिसे देखते हुए हाथ उठाकर दबी आवाज़से कहने लगे—अरे रे ! कर क्या रही हो, क्या कर रही हो ! लोग-बाग सुन लेंगे ! झूठ,—झूठ,—झूठी बात है जी ! मज़ाकमें—

ज्ञानदाने रोते रोते कहा—नहीं, हरगिज़ नहीं, मज़ाक नहीं है,—यह बात कभी झूठ नहीं हो सकती । यह सच्ची बात है ! सच्ची बात है ! तुम सब कर सकत हो ! तुम्हारे लिए असाध्य कुछ नहीं है !

“ नहीं नहीं, कहता हूँ न, मज़ाक है,—हँसी हँसीमें,—नातिनी है न,—अरेरे ! चुप भी हो जाओ,—नौकर-चाकर आ जायेंगे ! ”

कहते हुए गोलोक खटखट खड़ाऊँ खटकाते हुए घबड़ायेसं वहाँसं भाग खड़े हुए ।

ज्ञानदाके हाथका बैंगन हाथहीमें रह गया, वह मुँहमें आँचल टूँसकर भीतरसे जोरसे आती हुई रुलाईको जी-जानसे रोकनेकी कोशिश करने लगी ।

घरकी नौकरानीने हाँफते हुए आकर खबर दी—मौसीजी, नौकरानीको साथ लिये नानाजी तो खुद ही यहाँ आ पहुँच हैं !

ज्ञानदाने चटपट आँखें पौँछकर जिज्ञासु दृष्टिसे नौकरानीकी ओर देखा । उसको उसकी अश्रु-कलुषित व्यथित दृष्टिके सामने दासीने विस्मय और लज्जाके साथ कहा—

तुम्हारे यहाँकी उस पुरानी नौकरानीको साथ लेकर तुम्हारे ससुरजी आये हैं, मौसीजी । क्या हुआ जी !

खबर सुनकर ज्ञानदाके चेहरेपर मानो खूनका लेशमात्र भी न रह गया । आमने-सामने स्वयं मौतको देखकर भी आदमी शायद ऐसा पीला नहीं पड़ जाता ।

दासी डर गई, बोली—क्या हुआ है मौसीजी ?

ज्ञानदान इसका भी कुछ जवाब नहीं दिया, सिर्फ विह्वल शून्य दृष्टिसे देखती रही ।

दासीने फिर कहा—तुम्हारी क्या कुछ तबीयत खराब है, मौसीजी ?

अब ज्ञानदान सिर हिलाकर कहा—हाँ । बाबूजी कबके आये हैं, काली ?

दासीने कहा—सो तो नहीं जानती, मौसीजी । अभी हाल देखा मैंने, वे आँगनमें खड़े बाबू साहबसे बातें कर रहे हैं !

ज्ञानदान आश्चर्यके साथ पूछा—बाबूके साथ ?

नौकरानीने कहा—हाँ । मैं बाहरसे आ रही थी, बाबूने बुलाकर कहा, काली अपनी मौसीजीसे कह आ कि उनके ससुरजी उन्हें लिवाने आये हैं ।—अरी अम्मा,—वे तो खुद ही यहाँ आ रहे हैं !

इतना कहकर नौकरानी वहाँसे जरा हटकर खड़ी हो गई । दूसरे ही क्षण लाठीकी आवाज़से मालूम हुआ कि जिनकी यह लाठी है, उन्हें चलने-फिरनेके लिए अपनी आँखोंकी अपेक्षा लाठीपर ही अधिक निर्भर रहना पड़ता है ।

दूसरे ही क्षण एक अंधड़ उमरकी स्त्रीके पीछे पीछे एक वृद्ध पुरुष लाठीके सहारे रास्ता ठीक करता हुआ भीतर आ पहुँचा, और पुकारकर बोला—मेरी बेटी कहाँ है री ?

ज्ञानदाने उठकर उनके चरणोंसे सिर टेककर प्रणाम किया, और वह सामने खड़ी हो गई । वृद्ध ससुरने पहचान न पानेपर भी चेहरा देख लिया । आशीर्वाद देते हुए वे रो पड़े, बोले—बुढ़िया बूढ़ेको इस तरह भूलकर तू कैसे है बेटी ?

जो स्त्री साथ आई थी, उसने घुटने टेककर प्रणाम करके कहा—ठाक ही तो कह रहे हैं बहूजी । बूढ़ी सास मर रही है,—उसके मुँहमें सिर्फ एक ही रट है, मेरी बहूको लिवा लाओ,—मेरी बहूको बुला लाओ ! तुम कैसे इतने दिनों तक भूली रहीं, बताओ तो ?

ज्ञानदा, इस अभियोगका कुछ जवाब न देकर, एक हाथसे आँसू पोंछते हुए दूसरे हाथसे वृद्ध ससुरका हाथ पकड़कर उन्हें बरामदेमें ले गई और अपने हाथसे आसन बिछाकर उन्हें बिठाकर चुपचाप नीचेको मुँह किये खड़ी हो रही ।

वृद्ध बैठकर कहने लगा—चटर्जी महाशयको दो चिट्ठियाँ दीं, पर एकका भी जवाब नहीं मिला । मनमें सोचा, बड़े आदमी ठहरे, काम-धन्धेसे फुरसत न मिलती होगी, हम जैसे गरीबोंको जवाब देनेकी बात उनके ध्यानमें ही न आती होगी ! लेकिन, बेटी तो मेरी इस दुःखीके ही घरकी लक्ष्मी है,—

जो दासी साथ आई थी, वह बीच-हीमें बोल उठी—बहनोई बड़े आदमी हैं तो इससे क्या, इसके लिए कोई घरकी बहूको इतने दिनों तक दूसरोंके घर पड़ी थोड़े ही रहने देगा, बहूजी । इसके सिवा जिनकी सेवाके लिए आई थीं, वह बहन ही जब मर गईं ! मैं कहती हूँ—

वृद्ध ससुरने बाधा देकर कहा—रहने दे सदा, उन सब बातोंका । तुम्हारी सास बहुत बीमार हैं, बहू । आज अच्छा दिन देखकर ही उन्होंने भेजा है कि बहूको एक बार—

सदा गोली—बहूजी, तुम्हारे ही लिए शायद उनके प्राण नहीं निकल रहें हैं । कई दिनोंसे रूट लगा दी है,—सदा, बहन मेरी, जा तू, एक बार इन्हें लेकर चली जा । लाकर एक बार दिखा दे मुझ ।

कहत कहत सदाका गला करुणासे भीग गया ।

वृद्ध ससुरने कहा—चटर्जी साहबका मेरी दोनों ही चिट्ठियाँ नहीं मिलीं, सो तो हम लोगोंको मालूम नहीं था । हम लोग वहाँ न-जाने क्या क्या सोच रहे थे । बड़े भले आदमी हैं,—साधु आदमी हैं । सुनते ही कहा—इसमें क्या है ! आपका घरकी बहूको आप ले जायेंगे, इसमें आपत्ति कैसी ? पालकी लानेके लिए कह दिया । तुम्हारी मासकी बीमारीका हाल सुनकर बड़े दुःखसे कहने लगे,—बड़ी विपत्तिके दिनोंमें आपने ज्ञानदाको भेजा था, अब आपकी विपत्तिके दिनोंमें ऐसा पत्थर दुनियामें कौन हाँगा जो उसे विदा करनेमें आनाकानी करेगा ! अभी तुरंत ले जाइए, मैं सब बन्दावस्त किये देता हूँ ।

ज्ञानदा अबतक बिलकुल चुपचाप खड़ी थी, अकस्मात् फक चेहरेसे बोल उठी—चटर्जी जीजाने कही है यह बात ? अभी तुरंत भेज देंगे ? आज ही ?

सौदामिनीने खुश हांकर कहा—हाँ, कहेंगे क्यों नहीं। बल्कि, उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि खा-पीकर चल दीजिए तो तीन बजेकी गाड़ी मिल जायगी और आसानीसे कल सबेरे अपने घर पहुँच जायेंगे। इसके सिवा जब घरमें मराज रोगी पड़ा है, तब कहीं क्या एक दिनकी भी देरी की जा सकती है, बहूजी? बेचारी बूढ़ी सास तो दिन-रात हाय-हाय करके तुम्हारी बाट जोह रही है।

ज्ञानदा मानो मशीनकी पुतलीकी तरह सिर्फ अपनी पहली कही हुई बातका ही दुहरा सकी। बोली—उन्होंने कहा है भेज देंगे? आज ही?

वृद्धने सिर हिलाकर कहा—हाँ, बेटी, आज ही तो! रुका थोड़ा ही जा सकता है!

मगर, सौदामिनी धिगड़ उठी थी, उसके कंठ-स्वरसे वह छिपा भी न रहा। बोली—सुन लो बात इनकी! सास मर रही हैं,—जिनके घरकी बहू हैं, वे खुद लेने आये हैं,—फिर भला कौन नहीं भेजेगा, बताओ? इसके सिवा अब यहाँ रहना भी किस लिए? अच्छी बात है, न हां तो अपने बहनाईसे फिरसे पुछवा क्यों नहीं लेती बहूजी?

परन्तु, पुछवाना नहीं पड़ा। शायद, वे कहीं पास ही खड़े हुए थे, खड़खड़ाते हुए आ पहुँचे। बड़े व्यस्तसे मालूम पड़ रहे थे। वृद्धको लक्ष्य करके कहने लगे—नहीं मुखर्जी साहब, बैठके बातें करनेसे काम न चलेगा। अबेर हुई जा रही है, नहा-धोकर पूजा-पाठ करते और खा-पीकर जरा आराम करते-कराते वक्त हो जायगा। उधर फिर 'सायत' अच्छी नहीं है। आप भी खूब हैं! भेजनेमें आपत्ति! हम लोगोंको थोड़ी-बहुत तकलीफ होगी सो होती रहेगी, इससे क्या,—ऐसी क्या बात है! सास खाटपर पड़ी हैं, मेरे पीछे तो हजार झंझटें हैं,—जरा भी फुरसत नहीं, नहीं तो मैं खुद जाकर ज्ञानदाको छोड़ आता। चिट्ठी एक भी नहीं मिली! मिल जाती तो आपको तकलीफ उठाकर थोड़े ही आना पड़ता! डाकिया जितने हैं सब साले नालायक!—काली कहाँ चली गई? भोल्लूसे न हां तो कह दे, यहीं तम्बाकू भर लायेगा! उठिए मुखर्जी साहब, अब देरी न कीजिए, उठिए। ज्ञानदा, जरा जल्दी करो,—उधर फिर तीन बजेकी गाड़ी भी तो मिलनी चाहिए! ओह,—चोंगदार बाहर बैठा हुआ है,—जबसे घरवालीका इन्तकाल हुआ है, तबसे न

जान कैसा मन हो गया है मुखर्जी साहब, कुछ भी याद नहीं रहता !  
—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है ! तुम्हारा ही भरोसा है !

कहते हुए गोलोक चटर्जी महाशय जिस रास्तेसे आये थे, उसी रास्ते सार मकानको खड़ाऊँकी कठोर आवाज़से मुखरित करते हुए वापस चले गये ।

ज्ञानदाने एक भी बातका जवाब न दिया,—सिर्फ उसी तरफ देखती हुई पत्थरकी तरह कड़ी होकर खड़ी रही ।

भोल्लूने आकर कहा—मौसीजी, लल्लू नहानेके लिए रो रहे हैं । नदीमें ले जाऊँ ?

ज्ञानदा उसी तरह निश्चल निस्तब्ध बनी रही, नौकरकी बात उसके कानों तक भी न पहुँची ।

वृद्ध ससुर धीरेसे उठकर खंडं हाँ गये, बोले—बेटी, तो फिर मैं बाहर जाता हूँ, तुम तैयार हो लो ।

मदोने कहा—आज मेरी पश्री हैं, बहूजी, कह देना इस जून मैं भात न खाऊँगी—

ज्ञानदा सहसा मुड़कर खड़ी हो गई और बोली—मैं नहीं जाऊँगी ।

वृद्ध ससुर चौंक पड़े, बोले—नहीं जाओगी ? क्यों बेटी, आज तो अच्छा दिन है ?

सौदामिनी अपने पश्रीव्रतका फलाहार भूलकर साथ-ही-साथ बोल उठी—हम लोग तो भट्टाचार्यजीसे दिन-मुहूरत सब सुधवाकर घरसे चले हैं, बहूजी !

ज्ञानदाने सिर्फ कहा—नहीं बाबूजी, मैं न जा सकूँगी ।

गालोंकका दस-बारह वर्षका लड़का दौड़ा आया और उससे जबरदस्ती करने लगा—मौसी, तुम कह दो न मौसी, मैं नदी नहाने जाऊँगा—हूँ—नहीं, मैं जाऊँगा,—हाँ—

ज्ञानदाने किसीसे कुछ नहीं कहा, वह सिर्फ उस उदण्ड लड़केको जोरसे छातीसे चिपटाकर फूट-फूटकर रोने लगी ।



९

उसके बाद ज्ञानदानं कमरेमें जाकर जो किवाड़ बन्द किये, सो फिर खोले ही नहीं। वृद्ध अन्धे ससुर दोपहर-भर विमूढ़ बुद्धि-भ्रष्टकी भाँति चुपचाप बैठे रहे, फिर धीरे धीरे घरसे बाहर चल दिये। साथमें सौदामिनी भी चल दी। इस अप्रत्याशित मनाहीका कारण उसकी समझमें भी न आया, फिर भी वह औरत ठहरी,—इस तरह चुपचाप लौट जाना उसके बूतेसे बाहरकी बात थी। जानसे पहलं ज्ञानदाकं बन्द दरवाजेके बाहर खड़े खड़े उसने जो बातें कह सुनाई, वे न तो सुन्दर ही थीं और न मधुर। लेकिन, ज्ञानदाने किसी भी बातका जवाब नहीं दिया। यहाँ तक कि उसने अपने रोनेका शब्द भी रंचमात्र बाहर न जाने दिया। छोटपनमें विधवा होनेके बादसे अबतक जिन ससुने उसे छातीसे लगाकर पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, आज वे मृत्यु-शय्यापर पड़ी उसकी याद कर रही हैं,—उसका मुँह देखनेके लिए उनके प्राण तक मुक्त नहीं हो रहे हैं,—यह कैसी भयानक बात है और किस तरह वह इस व्यथाको अपने बन्द कमरेमें अकेली सहन कर रही है, इस बातको सिर्फ एक जगदीश्वर-हीन देखा। बाहर उसका कोई भी साक्षी न रहा।

चलते समय गोलोकने वृद्ध मुखर्जी महाशयसे भेंट की और विनयके साथ उन्हें राह-खर्च देना चाहा, साथ ही ज्ञानदाके न जानेपर उनसे भी बढ़कर आश्चर्य और वेदना प्रकट की।

गोलोकने बाहरकी बैठकमें आकर देखा कि मृत्युंजय भट्टाचार्य बैठे हैं। मृत्युंजयने खड़े होकर नमस्कार किया। गोलोकने प्रति-नमस्कार भी न किया, जरा-सी गरदन हिलाकर कहा—तुम्हें बुलवा भेजा था बेटाजी !

मृत्युंजयने कहा—जी हाँ, सुनकर ही तो, मुँहमें दो गस्सा डालकर दौड़ा चला आ रहा हूँ, चटर्जी महाशय।

गोलोकने कहा—सो तो आ ही रहे हो,—सगाई सम्बन्ध तो करते रहते हो; मगर, कुछ देशकी भी खबर—अबर रखते हो ? हाँ, घटक जरूर थे तुम्हारे बाबा,—रामरतन शिरोमणि। समाज उनके लिए नख-दर्पण-तुल्य था।

मृत्युंजयने कहा—जी हाँ, मेरा क्या अपराध है ? यह सब काम क्या औरतों-के वशका है ? खैर, कुछ भी हो,—मगर जगो बाम्हनीकी लड़कीकी हिमाकत

कत तो देखिए चटर्जी महाशय ! राखू बुआके मुँहसे सुननेके बाद हम सब तो गुस्सेसे जले जा रहे हैं ।

गोलोकने अत्यन्त आश्चर्यके साथ कहा—क्या, क्या ? बात क्या है बताओ तो सही ?

“ आपने क्या कुछ सुना नहीं ? ”

“ नहीं नहीं, कुछ नहीं । हुआ क्या है ? ”

मृत्युंजयने कहा—आपका भी घर सूना है, और उस लड़कीका भी ब्याह नहीं होता सुना है, आप दया करके दो फूल डालकर ब्राह्मणके कुलकी रक्षा करना चाहते थे, सो छोकरीने बड़े तावसे सबके सामने कहा है,—उस बातको मुँहसे कहते भी तो नहीं बनता चटर्जी साहब,—कहा है कि, धाटके मुरदेके गलेमें फट जूतोंकी माला बनाकर पहनाऊँगी !—उसके मा-बाप भी, सुनते हैं, इसमें शरीक हुए हैं ।

मारे क्रोधके गोलोककी आँखें और मुँह लाल सुर्ख हो उठा; परन्तु, एक लहमेमें अपनेको सम्हालकर ‘ हा: हा: हा: ’ हँसते हुए बोले—कहा है क्या ? छोकड़ी है तो बड़ी मुँहफट !

क्रुद्ध मृत्युंजयने कहा—हुआ कर मुँहफट, इसमें क्या आपको ऐसी बात कहेगी ! जानती नहीं वह, आपके चरणोंमें माला चढ़ानेसे उसकी छप्पन पीढ़ियोंका उद्धार हो जायगा ! आप कहते क्या हैं ?

गोलोकने प्रशान्त और प्रमन्नमुखसे कहा—बच्चे ठहरे ! बच्चे हैं अभी ! गुस्सा नहीं करना चाहिए जी मृत्युंजय,—गुस्सा नहीं करना चाहिए ! मरी इज्जतको वह क्या समझे,—जानते हो तुम लोग, और जानते हैं अन्य दस गाँवोंके लोग ।

मृत्युंजयने अपने गलेको कथंचित् संयत करके पूछा—तो क्या बात सच नहीं है ? आपने क्या राखू बुआसे—

गोलोकने कहा—राधाभाधव !—तुम भी क्या पागल हुए हो बेटाजी ! जिसकी ऐसी गृह-लक्ष्मी चली गई, वह फिर—

कहते कहते अकस्मात् जोरकी उसास लेकर बोले—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !

उनके भक्ति-गद्गद उच्छ्वासके उत्तरमें मृत्युंजय क्या कहे, उसकी कुछ समझमें न आया, वह सिर्फ उनके मुँहकी आर दखता रह गया ।

गालोक कुछ देर बाद उदास कंठसे कहने लगे—खाक-धूल कुछ याद भी तो नहीं रहता,—लोग तो दिन-रात खाये ही डालते हैं मुझे । इसे बचाओ, उसकी रक्षा करो, अमुकका कुल उद्धार करो,—मुझे तो तुम जानते ही हो, हमेशासे अन्यमनस्क उदासीन आदमी ठहरा,—हो सकता है, मुँहसे कभी किसीके सामने कुछ निकल गया हो ।—मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है ! तुम्हीं गति-मुक्ति हो !

घटक मृत्युंजयके हाथमें चाँद आ गया, विनयके साथ बोला—जी, अगर यही बात है, तो आपका हमारे प्राणकृष्ण मुखर्जीकी लड़कीको अपने चरणोंमें स्थान देना ही पड़ेगा । ब्राह्मण बड़ा गरीब है, लड़कीकी उमर भी तेरह-चौदह वर्षकी हो चुकी,—लड़की क्या है लक्ष्मी है, देखनेमें भी सुरूपा है !

गालोकने कहा—तुम पागल हुए हो मृत्युंजय । मेरे लिए क्या अब यह सब शोभा देता है, या अच्छा ही लगता है ? हाँ तो, लड़की क्या इतनेहीमें चौदह सालकी हो गई ? खून बढ़नी देह है, सुना है न ?

मृत्युंजयने उत्साहित होकर कहा—जी हाँ, खूब खूब । इसके सिवा जैसी शान्त है, वैसी ही सुन्दरी ।

गालोकने मन्द मुसकराते हुए कहा—मेरे लिए, और सुन्दरी ! सुरूपा !—कैसी लक्ष्मीकी प्रतिमा खो दी है !—मधुसूदन !—किसीका भी दुःख सहा नहीं जाता, सुननेसे दुःख होता है । तेरह-चौदह वर्ष कह रहा है तो पन्द्रह-सोलहकी तो होगी ही ! ब्राह्मण बड़ी विपत्तिमें है, ऐं !

मृत्युंजयने सिर हिलाकर कहा—इसमें क्या सन्देह !

गालोकने कहा—समझता सब हूँ मृत्युंजय, कुलीनके कुलकी रक्षा करना कुलीनका ही काम है । न करनेसे प्रत्यवाय × होता है । परन्तु, एक तो शोका-तापका शरीर, उमर भी समझ लो पचासके पास पहुँच रही है,—लेकिन, न जाने कैसा स्वभाव है मेरा, दूसरोंकी विपत्तिकी बात सुनते ही हृदय जैसे रोने लगता है,—नाहीं करते नहीं बनता ।

× शास्त्रोक्त कर्म न करनेसे लगनेवाला पातक ।

मृत्युंजय बार बार सिर हिलाने लगा । गोलोक फिर एक गहरी साँस लेकर कहने लगे—इस स्वभाव-कुलीनके गाँवमें समाजका शिरोमणि बनना कैसी आफत है, सो मैं ही जानता हूँ । कौन भूखों मर रहा है, किसके पास पहननेको कपड़े नहीं, किसका इलाज नहीं हो रहा है,—यह सब तो बना ही हुआ है,—उसपर यह सब जुल्म, मेरा तो जीना दूभर हो गया मृत्युंजय ! प्राणकृष्ण गरीब है,—लड़की खूब बड़ी हो गई है, ऐं ? तेरह-चौदहकी नहीं जी, पन्द्रह-सोलहसे कम हरिगिज़ न होगी,—अच्छा तो, कह देना प्राणकृष्णसे, न हां तां, एक बार मिल लेगा—

मृत्युंजयने व्यग्र होकर कहा—आज ही,—जाते ही भेजे देता हूँ,—बल्कि अपने साथ ही लिवा लाऊँगा ।

गोलोकने उदास कंठसे कहा—ले आना । पर, बड़ी मुश्किलमें डाल दिया तुमने,—गरीब ब्राह्मणको इस संकटमें नाहीं कैसे करूँगा !—मधुभूदन ! त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन !—जो करायेंगे, वही करना हांगा । हम सब तो निमित्त-मात्र हैं ।

मृत्युंजय चुप बना रहा ।

गोलोकको सहसा मानो किमी बातकी याद आ गई । बोले—हाँ, सुना, तुम्हें जिस कामके लिए बुलाया था, वह बात तो अभी कही ही नहीं । मेरा कहना था, यह महीना बड़ी तंगा-तुंगीसे चल रहा है, तुम अपने व्याजके रुपये—

मृत्युंजयने करुण कंठसे कहा—इस महीनेमें अगर जरा दया करें—

गोलोकने कहा—अच्छा अच्छा, खैर जाने दो, न मही । मैं तकलीफ देकर एक पाई भी नहीं लेना चाहता । पर बेटाजी, तुम्हें भी मेरा एक काम करना हांगा ।

मृत्युंजय प्रसन्न होकर बोला—जी हाँ, आज्ञा दीजिए ।

गोलोकने कहा—सनातन हिन्दू धर्मको बचाते और समाजकी रक्षा करते हुए चलना मामूली जिम्मेवारी नहीं है, मृत्युंजय । यह महान् भार जिसके सरपर है, उसे सब तरफसे आँख-कान खोले रहना पड़ता है । प्रियनाथकी माँके बारेमें, उस समय, न-जाने क्या गोलमालकी बात सुननेमें आई थी । इस मामलेकी पक्की खबर तुम्हें उनके गाँव जाकर गुप्त रूपसे लानी होगी । हाँ, इस मामलेमें तुम्हारे

बाबा शिरोमणिजी सिद्धहस्त थे, बीस-तीस गाँवोंकी नब्जका हाल तो उनकी ज़बान-पर रहता था,—भूपति चटर्जीका मैंने दस साल हुक्का-नाई बन्द रखा था,—भाई साहबका अन्तमें बाप-बाप करके नेस्त-नाबूद होकर गाँव छोड़के भाग जाना पड़ा,—वह तुम्हारे बाबाकी ही सहायतासे ही हुआ था ! मगर, तुम लोग, बेटा, उनका नाम न रख सकें, यह बात तो माननी ही पड़ेगी ।

मृत्युंजय अपने पूर्वजोंकी तुलनामें अपनी हीनता महसूस करके बहुत ही लजित हुआ; बोला—आप देख लीजिएगा चटर्जी साहब, मैं एक ही हफ्तेके अन्दर उनके पेटकी खबर तक निकाल लाऊँगा ।

गोलोकने उत्साह देते हुए कहा—सो तुम ला सकते हो, ला सकते हो । कितने बड़े वंशक लड़कें हैं, सो भी तो देखो । मगर, एक बात है बेटाजी, इस विषयमें पाँच कानों तक बातचीत पहुँचानेकी ज़रूरत नहीं,—बात तुम्हारे और हमारे अन्दर ही रहेगी । समाजकी इज्जत-आबरू रखनेके लिए बहुत समझ-बूझकर काम करनेकी ज़रूरत है । हाँ तो, सुनो, सिर्फ़ ब्याज ही नहीं, तुम्हारे असल रूपोंके बारेमें भी मैं सोचूँगा; तकलीफ़में हो तुम, यह बात अगर पहले जता देते—

मृत्युंजय पुलकित हो उठा, बोला—जी, जो आज्ञा, जो आज्ञा,—हम तो आपहीके चरणोंमें पड़े हैं । मैं कल ही इसका पता लगाने जाऊँगा ।

इतना कहकर वह चलने लगा ।

गोलोकने दाँतोंतले जीभ दबाकर कहा—ऐसी बात ज़बानपर भी मत लाना, बेटाजी । मैं तो निमित्त-मात्र हूँ,—‘उन्हीं’के श्रीचरणोंमें कीटानुकीटके समान पड़ा हुआ हूँ ।

यह कहकर उन्होंने ऊपरकी ओर शिवनेत्र करके हाथ जोड़ नमस्कार कर लिया ।

मृत्युंजय जा रहा था, अन्यमनस्क गोलोक सहसा बोल उठे—और सुनो, प्राणकृष्णको एक बार भेजनेमें चूक मत जाना । जबसे ब्राह्मणके संकटकी बात सुनी है, मेरा हृदय रो रो उठता है !—नारायण ! मधुसूदन ! तुम्हारा ही भरोसा है !



## १०

प्रसिद्ध जयराम मुखर्जीके दौहित्र चिरंजीव वीरचन्द्र बनर्जीके साथ ही संध्याका ब्याह होना पक्का हो गया। कल वरपक्षके लोग आशीर्वाद करने आयेंगे। कन्या-पक्षके घर उसीकी तैयारियाँ हो रही हैं। अगहनके आखिरमें ब्याह है, बस यह एक ही सहालग है, फिर बहुत दिनों तक सहालग नहीं है। इसी सिलसिलेमें बहुत वर्षों बाद, बहुत खुशामद-बरामदके बाद, जगद्धात्रीकी सासु काशीसे आई हैं। शामक बाद भंडारेके बरंडेमें बैठकर दियाके उजालेमें जगद्धात्री मिठाई बना रही है और उसके पास ही कम्बलक आसनपर बैठी हुई वृद्धा सासु कालीतारा माला फेर रही है। जाड़ा शुरू हो गया है, उसकी देहपर एक गेरुआ रंगकी लोई पड़ी हुई है और पहनावा भी उसा रंगका है। पुत्र-वधूकी ओर देखकर उसने शान्त स्वरसे पूछा—ब्याहक अब कुल दस ही दिन बाकी हैं, क्यों बहू ?

जगद्धात्रीने मुँह उठाकर देखा, और कहा—कहाँ रह दस दिन मा ? आजके दिनको लेकर नौ दिन रह हैं। यह काम हो जाय तो जान बच। इस जल देशमें कुछ भी जब तक हा न जाय, तब तक मानो भरोसा ही नहीं होता।

सासुने जरा हँसकर कहा—सभी देशोंमें यही डर है बेटी, सिर्फ तुम्हारे ही गाँवकी बात नहीं। और फिर इसमें आसा-भरोसेकी कौन-सी बात है बहू, जब ऐसी लछमीकी प्रतिमा-सी लड़कीका पानीमें बहा रही हो ?

जगद्धात्री चुपचाप काम करने लगी, उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

सासु कहने लगी—प्रियसे सब सुन लिया है मैंने। आज संभरे नहाके लौटते बखत अरुणका भी देखा। ऐसा सानेका चाँद-जैसा लड़का तुम्हें पसन्द न आया, बहू ?

जगद्धात्री विशेष खुश न हुई, बोली,—लेकिन सिर्फ पसन्दगी ही सब-कुछ नहीं है, मा।

सासुने कहा—नहीं है, माना। पर लौटकर संध्यासे जिकर करके थोड़ा-थोड़ा जो-कुछ आभास मिला, उससे तो दुःखसे मानो मेरी छाती फटने लगी। अच्छा बहू, मा होकर भी क्या तुम्हारी निगाहमें यह बात नहीं आई ?

निगाहमें तो उसके बहुत दिन पहले ही बात आ चुकी है, परन्तु उसे मंजूर

करना तो बिलकुल ही असम्भव था। बल्कि, डरते हुए इधर-उधर देखकर उसने दबी जवानसे कहा भी—काम-काजका घर है, कोई आ गया तो सुन लेगा मा।

सासुने फिर कुछ न कहा; परन्तु, जगद्धात्री अपने कंठ-स्वरकी रुक्षतासे स्वयं ही लज्जित होकर आहिंसेसे बोली—अच्छा मा, तुम कैसे ऐसी बात कह रही हो ! तुम अपने इतने बड़े कुलकी इज्जत पानीमें बहाकर कैसे लोगोंके सामने मुँह दिखाती, बताओ। तो ? इसके सिवा उसके तो जात भी नहीं रही। जिन लोगोंने उसकी तरफसे तुम्हारे सामने वकालत की है, यह बात क्या उन लोगोंने तुमसे कही है ?

जगद्धात्रीने सोचा कि इसके बाद फिर कोई कुछ कह ही नहीं सकता। परन्तु, सासुने गरदन हिलाकर कहा—कही क्यों नहीं। पर उसका कुछ भी गया नहीं बहू, सब-कुछ मौजूद है। सिर्फ उसकी विद्या-बुद्धिकी ही तरफसे नहीं कहती मैं। छोटी जात होनेसे जिन दो अनाथ लड़कियोंको तुमने निकाल दिया, उसने उन्हें भी छातीसे लगा लिया। उसकी जात भगवानके वरसे अमर हो चुकी, बहू, उसे अब आदमी नहीं मार सकता।

जगद्धात्री मन-ही-मन कुपित होकर बोली—अनाथ होनेसे ही क्या दूले-डोम ब्राह्मणोंके घर रहेंगे मा ? शास्त्र क्या यही कहते हैं ?

सासुने कहा—सास्तर क्या कहते हैं, सो तो ठीक तौरसे नहीं जानती बहू। पर अपनी बिथा कितनी है, सो तो ठीक ही जानती हूँ। मेरी बात किसीसे कहनेकी नहीं है; पर, ऐसी बिथा अगर तुम्हें होती, तो समझती, बहू, कि छोटी जातके कारण आदमीसे घृणा करनेकी सजा भगवान् बराबर किधरसे दे रहे हैं। यह जो कुलकी इज्जत है, यह कितना बड़ा पाप है, कितनी बड़ी धोखेकी टट्टी है, यह अगर तुम्हें मालूम हो जाता तो अपनी लड़कीको तुम इस तरह बलि न चढ़ा सकती। जात और कुल ही सत्य है, और दो आदमियोंके सारे जीवनका सुख-दुःख ही क्या इतना भारी झूठ है बेटी ?

जगद्धात्रीने क्षुब्ध होकर कहा—तो क्या इस झूठको लेकर ही दुनिया चल रही है मा ?

सासुने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा—दुनिया तो चलती नहीं बहू, चलता है सिर्फ हमारी जैसी शापग्रस्त जातका। मैं परदेसमें रहती हूँ, उमर भी बहुत हो

चुकी है, बहुत-कुछ देखा है, बहुत दुख पाया है; मैंने,—मैं जानती हूँ जिसे तुम वंशकी इज्जत समझती हो, वास्तवमें वह है क्या। पर, बात तुम्हें खोलकर कह भी नहीं सकती, शायद तुम समझ भी न सकांगी। फिर भी, यह बात मेरी याद रखना बहू, झूठको इज्जत देकर जितना ऊँचा बनाये रखोगी, उसमें उतनी ही ग्लानि, उतना ही कीचड़, उतना ही अनाचार इकट्ठा होता रहेगा। और हो भी यही रहा है।

जगद्धात्री कुछ जवाब देना चाहती थी; पर, लड़कीको आंत देख चुप रह गई। संध्या पिछवाड़ेके बगीचेमें अब तक अपने फूलोंके पौधोंमें पानी दे रही थी; घरमें आकर हाथका लोटा आँगनके चबूतरपर रखकर सामने आ खड़ी हुई। माकी तरफ देखकर बोली—यह क्या है मा ? चन्द्रपूली \* है क्या ?

यह कहकर चटसे उसने दादीकी ओर मुड़कर कहा—क्यों दादी, सबकं यहाँ लड्डू बनते हैं, हमारे यहाँ क्यों नहीं ?

कालीताराने स्नेहके साथ कहा—सो तो मैं नहीं जानती ब्रिटिया।

संध्याने कहा—वाह, तुमने अपनी सासुसे यह बात पूछी नहीं मालूम हंती है।

कालीताराने कहा—कैसे पूछती बेटी, जनममें कभी मसुरालका मुँह तक तो देखा नहीं।

जगद्धात्री इस बातको जानती थी, वह लजित होकर चुपचाप अपना काम करने लगी। संध्याने फिर पूछा—अच्छा, दादी, तुम्हारी सब-मिलाकर कितनी सौतें थीं ?—एक सौ ?—दो सौ ?—तीन सौ ?—चार सौ ?

दादी फिर हँस दी। बोली—ठीक-ठीक नहीं मालूम ब्रिटिया ! पर, इतनी भी हों तो कोई अचम्भकी बात नहीं। मेरा ब्याह हुआ था आठ सालकी उमरमें, तब उनकी स्त्रियाँ थीं छियासी। उसके बाद भी बहुतसे ब्याह किये थे, पर कितने,—सो शायद वे भी न जानते थे, मैं कैसे जानती !

संध्याने कहा—आ-हां, उनके पास लिखे तो थे ? उस खातको अगर लुझाकर रख लेतीं, दादी, तो बाबूजीसे कहकर उनका पता लगवाती कि वे सब अब कहाँ कहाँपर हैं। हो सकता है कि मेरे कितने ही चाचा, कितने ही ताऊ,

---

\* नारियलकी एक प्रकारकी अर्द्धचन्द्राकार मिठाई।

कितने ही भाई-बहन सब अब भी मौजूद हों, क्यों न दादी ? ओ हो, उन सबको अगर जान-पहचान लेती !

थोड़ा हँसकर वह फिर पूछने लगी—अच्छा दादी, बाबा दैवयोगसे अगर कभी आ जाते थे तो उन्हें कितने रुपये देने पड़ते थे ? मोल-भाव करनेमें तुम्हारे साथ खूब तकरार भी हो जाया करती होगी,—न ?

जगद्धात्री नाराज हो उठी । बोली—पुरखापन छोड़के ठाकुरजीकें भोगकी तैयारी तो कर डाल, संध्या ।

दादी खुद भी जरा हँसकर बोली—सब-कुछ तो जानती है, बिटिया, पर, तां भी तो, तुम लोगोंका मोह दूर नहीं होता ।

यह सब विरुद्ध आलोचना शुरूसे ही जगद्धात्रीको अच्छी न लग रही थी; और, मन-ही-मन वह नाखुश भी कम न हो रही थी । अब सासुकी बातेंक जवाबमें उसने कहा—तबकी बात तो मैं जानती नहीं मा, पर अब इतने ब्याह भी कोई नहीं करता, और वैसे अत्याचार भी नहीं होते । और, मान भी लिया जाय कि कुछ लोगोंने उम समय अन्याय किया हो, तो इससे क्या कोई वंशकी इज्जत छोड़ देगा मा ? भरे जीतेजी तो ऐसा नहीं होनेका ।

घर-मालिकिन पतोहूके गरम कंठस्वरसे सासु चुप रह गई । परन्तु, संध्या व्यथित हो उठी, उसने दादीके और जरा पास जाकर कोमल स्वरमें पूछा—मगर, वे अत्याचार क्यों करते थे दादी ? उनके क्या माया-ममता भी न होती थी ?

दादीने संध्याका हाथ पकड़कर उसे अपने पास खींच लिया, और कहा—माया-ममता कैसे हांगी, बेटी ? एक रातके सिवा जीवनमें जिसके साथ फिर कभी शायद भेंट मुलाकात ही न होती हो, उसके लिए किसीका हृदय रो सकता है भला ? तुम्हारे ऊपर जो होने जा रहा है, वह क्या और किसीसे कम अत्याचार है, बेटी ?

जगद्धात्री हाथका काम छोड़कर सहसा उठ खड़ी हुई और अत्यन्त कठोर स्वरमें लड़कीसे बोली—तू ठाकुरद्वारेको जायगी, या मैं ही काम-काज छोड़कर उठ जाऊँ, संध्या ?

संध्या माके मुँहकी ओर देखने लगी पर कुछ बोली नहीं, और उठनेकी भी कांशिश उसने नहीं की । वह धीरेसे दादीसे पूछने लगी—पर, जिस चीजकी इतनी इज्जत है,—जो इतने दिनोंसे इसी तरह चली आ रही है, दादी, उसे क्या नष्ट होने देना अच्छा है ?

अब तो सासुने भी बहूकी रूखी बातोंपर विशेष ध्यान नहीं दिया। नातिनीके प्रश्नके उत्तरमें कहा—कोई बात बहुत दिनोंसे चली आ रही है, सिर्फ इसीसे वह अच्छी नहीं हो जाती, बेटी। सम्मानके साथ होनेपर भी नहीं। बीच-बीचमें उसकी जाँच करके, उसपर विचार करके देख लेना चाहिए। जो ममतासे आँख मींचके रहना चाहता है, वही मरता है। मेरी सब बातें किसीसे कहनेकी नहीं हैं बिटिया, पर इसके लिए जीवन-भर मुझे दिन-रात ज़हरकी आगमें जलना पड़ा है,—

कहते कहते उनका कंठ मानो भीतरकी अव्यक्त वेदनासे रुक गया।

संध्यान उनका हाथ अपने हाथमें लेते हुए आहिस्तेसे कहा—रहने दो दादी, उन सब बातोंको।

उन्होंने दूसरे हाथसे पोतीको अपनी छातीके पास खींचकर चुपचाप अपने आपको क्षण-भरमें सम्हाल लिया; उसके बाद, वे स्वाभाविक कंठसे धीरे-धीरे कहने लगीं—संध्या, देशकें राजाने किसी समय सिर्फ गुणोंको देखते हुए ही कुछ ब्राह्मणोंको कुलीनताका सम्मान देकर उन्हें श्रणीबद्ध किया था; उसके बाद, फिर ऐसे बुरे दिन भी आ गये कि जब देशकें राजाकी आज्ञासे उन्हींके वंशधरोंको सिर्फ दोषोंकी संख्या गिनकर, एक साथ मिलाया गया था। जिस सम्मानकी प्रतिष्ठा ही त्रुटियों और अनाचारोंपर हुई थी, उसके भीतरके झूठको अगर जानतीं, बेटी, तो समझतीं कि, आज जिस चीज़ने तुम लोगोंको इतना मुग्ध कर रखा है, सिर्फ वही कुल नहीं है; बल्कि, छांटी जात होनेसे जिन दूलोंकी अनाथाओंको निकाल दिया है उन्हें भी छोटा कहते हुए लज्जासे तुम्हारा सिर नीचा हो जाता।

जगद्धात्री क्रोध और विरक्तिको और न सह सकी, वह उठकर वहाँसे चली गई; पर, संध्या चुपचाप वहीं बैठी रही। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो उसकी सत्यवादिनी संन्यासिनी दादीसे अपने भीतरका कोई एक अत्यन्त लज्जा और व्यथाका इतिहास किसी भी तरह प्रकट करते नहीं बनता; पर, छाती फटी जा रही है। सहसा उसका ध्यान गया, कि उसके बाबाके बहु-विवाहके साथ इसका मानो कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कुछ देरतक चुपचाप रहकर उसने शरमाते हुए चुपकेसे पूछा—सचमुच ही क्या दादी, हम लोगोंके अन्दर बहुत ज़्यादा अनाचार घुस गया है? जिसके बारेमें हमें इतना गर्व है, उसका क्या अधिकांश खोखला है?

दादीने कहा—उसमें कितना खोखलापन है, इस बातको मुझसे ज़्यादा और कोई नहीं जानता ।

यह बात कहते कहते उसकी आँखें भर आईं, जो संध्याके अन्धकारमें भी संध्यासे छिपी न रहीं । दादी हाथसे आँखें पोंछती हुई कहने लगी—पर, अब बीच-बीचमें मैं क्या सोचा करती हूँ, सो जानती है संध्या ? मनुष्य-मनुष्यमें यह जो भेद-भावकी चहार-दीवारी है, यह मनुष्यने ही अपने हाथसे बनाई है, यह भगवानका नियम हरगिज़ नहीं है ! उनके प्रकट-मिलनके सिंहद्वारपर मनुष्य जितने ही काँटोंपर काँटे इकट्ठा करता जाता है, गुप्त गह्वरमें उसके अत्याचारोंके बेड़ेमें उतने ही अधिक छिद्र होते रहते हैं । उनमेंसे होकर फिर समाजमें पाप और गन्दगी ही छिपे छिपे युसती रहती है ।

इसके बाद कुछ देरतक दोनों ही चुपचाप स्थिर होकर बैठी रहीं । संध्याकां निश्चित रूपसे यह मालूम होने लगा कि इस बातके साथ उसके बाबाके बहु-विवाहका सचमुच ही कोई-न-कोई जघन्य सम्बन्ध है । इससे ज़्यादा और कुछ समझमें न आनेपर भी उस न-जाने कैसा एक डर-सा लगने लगा ।

दादीने कहा—जाओ बेटी, ठाकुरद्वारेका काम कर डालो जाकर ! नहीं तो, तुम्हारी मा बहुत गुस्सा होगी ।

संध्याने अनमने-भावसे जवाब दिया—वे खुद ही कर लेंगी, दादी ।

इतना कहकर चटसे उसने उनका एक हाथ पकड़कर कहा—चलो न दादी, मेरे कमरेमें चलकर उस जमानेकी बातें करना, करोगी ?

यह कहते हुए वह एक तरहसे ज़बरदस्ती खींचकर उन्हें अपने कमरेकी ओर ले गई ।



## ११

रात ज़्यादा नहीं हुई थी,—मुश्किलसे पहर रात बीती हांगी; परन्तु, जाड़के दिन ठहर, गाँवमें अभीसे सन्नाटा-सा मालूम हो रहा था । ज्ञानदाके शयन-कक्षमें एक कोनेपर मिट्टीका दिआ टिमटिमा रहा था । ज्ञानदा जमीनपर बैठी थी और उसके पास ही रासमणि बैठी हुई हाथ-भुँह हिला हिलाकर उसे समझा रही थी—बात मान ज्ञानदा, पागलपन मत कर । दवा दे गई है—उसे पी डाल । फिर जैसा था वैसा ही हो जायगा, कोई जान भी न पायेगा ।

ज्ञानदान आँसुओंसे भीगे हुए गलसे कहा—ऐसी बात मुझे तुम लोग कैसे कह रही हो, जीजी ? पापके ऊपर फिर इतना बड़ा पाप कैसे करूँ ? नरकमें भी तो फिर मुझे जगह न मिलेगी ।

रासमणिने डॉक्टर कहा—और इतने बड़े कुलके मुँहपर स्याही पोतकर तुम शायद स्वर्ग चली जाओगी, सोचती होगी ? जिसमें सबकी भलाई है, सो ही कर ज्ञानदा,—थुक्का-फजीहत करके इतने बड़े एक देशपूज्य आदमीका सिर नीचा मत करा देना ।

ज्ञानदाने हाथ जोड़कर रोते हुए कहा—यह दवा मैं किसी भी तरह नहीं खा सकती,—तुम लोग मुझे जहर देकर मार डालोगे, मैं समझ गई हूँ ।

रासमणिने अपने चेहरेको बहुत ही विकृत करके कहा—हाँ, तो कहती क्यों नहीं, मरनेके डरसे नहीं खाऊँगी ? झूट-मूठको धर्म धर्म मत चिल्ला !

ज्ञानदाने कहा—पर, यह तो जहर है !

रासमणिने कहा—जहर है, तो तेरा क्या ? तू तो मर नहीं रही है !

यह कहकर तुरत पलक मारनेके साथ ही वह अपने तीक्ष्ण स्वरको कोमल और करुण बनाकर बोली—पगली और किसे कहते हैं । हम लोग क्या तुझसे बुरी चीज़ खानेका कह सकते हैं बहन ? ऐसा भी कभी हो सकता है ? रासी बाम्हनीसे ऐसी बात कोई कह सकता है भला ? सो बात नहीं,—बहन, तकदीरके फेरसे जो दुश्मन तेरे पेटमें आ गया है,—उस आफत-बलाको मिटा दे;—मामला ही कितनी देरका है ? उसके बाद जैसी पहल थी, वैसी फिर रह,—खा-पी, घूम-फिर, तीर्थ-धर्म व्रत-उपास कर,—इस बातको कौन सुनेगा आर कौन जानेगा ?

ज्ञानदा नीचेको निगाह किये चुपचाप स्थिर बैठी रही ।

रासमणिने पृछा—तो खानेको कह दूँ, बहन ?

ज्ञानदाने मुँह न उठाया, पर वह रा पड़ी; और बोली—नहीं, मैं कुछ भी खाऊँगी-पीऊँगी नहीं,—फिर मैं हरगिज़ न बचूँगी ।

रासमणिने बहुत गुस्सेके साथ कहा—यह तो तेरी बड़ी ज़बरदस्त, दुनियासे न्यायी, जिद्द है, ज्ञानदा ? नहीं पीना चाहती, तो जा यहाँसे । मरद ठहरे, मान ले एक अकाज उनसे बन ही गया, तो क्या औरतको ऐसी जिद्द करनी चाहिए ? चटर्जी-भइया तो कहते हैं,—खैर जो होना था सो हो गया, उसे हम

पचास रुपये देते हैं, वह काशी-वृन्दावन कहीं चली जाय। इसके बाद तो फिर उन्हें दोप नहीं दिया जा सकता, ज्ञानदा ? रुपये भी कम नहीं हैं, एक साथ मुट्ठी-भर।

ज्ञानदाने कहा—मैं रुपये नहीं चाहती, जीजी। रुपये लेकर मैं क्या करूँगी ? मैं किसीको कहीं भी पहचानती नहीं—मैं कैसे किसके पास जाकर अपना यह मुँह दिखाऊँगी ?

रासमणिने कहा—अब यह तुम्हारी बदनाम करनेकी बात नहीं तो और क्या है ? कहावत है, काशी-वृन्दावन ! वहाँ इतने लोगोंकी गुजर होती है, तुम्हारी ही न होगी ?

ज्ञानदा कुछ देर तक चुप रहकर बोली—रासू-जीजी, मैं सब जानती हूँ। कल उनका प्राणकृष्ण मुखर्जीकी लड़कीके साथ ब्याह होगा, सो भी जानती हूँ। आज, इसीलिए मुझे, —जहर पिलाकर हो, काशी भेजकर हो, —जैसे बने वैभे, घरसे निकाल बाहर करना जरूरी ही है। पर भगवान् !—

कहते-कहते सहसा वह फूट-फूटकर रो उठी और दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी—भगवान् ! तुम्हारे चरणोंमें जब इतने लोगोंका जगह मिलती है, तो मुझे भी मिलेगी। लेकिन, बचपनसे कभी मैंने कोई पाप नहीं किया, शायद कभी करना भी न पड़ता,—पर, तुम तो सब जानते हो भगवान् ! इस पापके दंडका सारा बोझा क्या निरुपाय होनेसे सिर्फ मेरे ही ऊपर लाद दोगे ?

भगवानके नामसे तो रासमणिके क्रोधकी शायद सीमा न रही, उसने डाँटकर कहा—अंर मर परेको तू ! मरी सरापती-कोसती क्यों है ? दूध-पीती बच्ची है न ! चोर मरता है सातका लेकर,—सो किस्सा तू कर रही है। तू शह न देती तो मरदोंकी हिम्मत है भला ? उनका क्या दोप ? हाँ, कोई कहे तो ऐसा मरद कौन है—रासी बाम्हनीको !

इसका अब जवाब क्या है ! ज्ञानदा चुपचाप बैठी आँसू पोंछती रही। रासमणिने शान्त गलेसे कहा—अच्छा तो सुन, केवट-बहूकी दवा पीनेमें अगर तुझे डर मालूम होता है, तो प्रियनाथपर तो विश्वास होता है ? न हाँ तो वही ऐसी कोई दवा दे जायगा, जिससे—

ज्ञानदा अवाक् होकर बोली—वे देंगे ?

रासमणिने कहा—हूँ ! देंगे नहीं तो क्या ! चटर्जी भइया कहेंगे तो देते ही

बनेगा। खबर भी दे दी गई है, अब आये ही समझो ! तब नहीं करनस काम न चलेगा, कहे देती हूँ।

ज्ञानदा चुप बनी रही। रासमणि अधिकतर उत्साहजनक और भी कुछ कहना चाहती थी; पर, पास ही आँगनमें जूतोंकी आहट और प्रियनाथकी आवाज़ सुनाई दी।

“ओः, यहाँ एक बत्ती तक नहीं जलाई जाती ! सब लोग गये कहाँ,” कहते हुए खट-खट करके वे कमरेमें आ पहुँचे। बगलमें दबी हुई छोटी-बड़ी चार-पाँच किताबें तख़्तपर और हाथका बाक्स नीचे रखते हुए बोले—आज कैसी तबीयत रही ज्ञानदा ! अरे रे,—यह न होगा,—यह न होगा,—ठंड पड़ने लगी है, जमीनपर बैठना नहीं होगा,—रेमिडी जरा बदल देनी होगी, खैर ! ये कौन ? मौसीजी हैं क्या ? कबकी आई हो ? सब हैं तो अच्छी तरह ? तुम्हारी नातिनीको कल रास्तेमें देखा था, उसकी तन्दुरुस्ती तो कुछ अच्छी नहीं मालूम हुई। भूख कैसी लगती है ? कल घरपर लाकर उसकी जीभ जरा दिखाना मुझे। मरनेकी भी फुरसत नहीं, किधर-किधर देखूँ ! जिधर निगाह न रखूँ, उधर ही,—कल लड़कीका ब्याह है,—मौसी, कल लेकिन संबरे ही पहुँचना होगा ! लड़कीका ब्याह ठहरा, कल मेरा बाहर जाना तो हो ही नहीं सकता,—पर मरीजोंका क्या होगा, इसी सोचमें पड़ा हूँ। एक-आध हों, सो भी नहीं। ऐसा हो गया है कि प्रियनाथको छोड़कर विपिनको कोई बुलाना ही नहीं चाहता ! उसकी भी फिर कैसे गुजर हो ? दुःख भी तो होता है, कुछ भी हां, उसने भी थोड़ा-बहुत सीखा ही है। दो हाथ, देखूँ जरा। पंचू ग्वालेको, सुना है कि, सर्दी बैठ गई है,—चटसे उसे भी एक बार देख आना है। लाओ हाथ देखूँ—

ज्ञानदाने हाथ नहीं निकाला, चुपचाप सिर झुकाय बैठी रही।

रासमणिने कहा—इस छोकरीकी बीमारी तुमने क्या पाई, बताओ तो बेटा ?

प्रियनाथने उसके मुँहकी तरफ देखकर कहा—डिस्—बदहजमी,—अजीर्ण,—अम्ल !

परन्तु प्रभकारिणीका सिर हिलाना देखकर उनकी डाक्टरी विद्या बिलकुल बुझने-सी लगी। व्यग्र होकर बोले—क्यों क्यों ? नहीं क्यों ? विपिन आया होगा क्यों ? क्या बोला वह ? कहाँ है देखूँ, क्या दवा दे गया है ?

रासमणिके मुँहपर आया हुआ सच-झूठ, उग्र-कोमल, भला-बुरा, कुछ भी नहीं

रुकता, भूमिका बनाकर बात कहनेकी ज़रूरत उसे शायद ही कभी पड़ती हो,— मगर फिर भी, उसे भी आज सावधान होना पड़ा। सिर हिलाकर बोली— नहीं बेटा, न विपिन डाक्टरको बुलाया, न परान चटर्जीको,—तुम्हारे आगे वे हैं ही क्या ? डाक्टरी वे क्या जानें ? चटर्जी-भइया तो इस बातको डंकेकी चोट सबसे कहा करते हैं !

“ कहेंगे नहीं ? यह तो सभी कहेंगे ! विपिनको तो मैं दम साल सिखा सकता हूँ। तबकी बार उसने पॉलसेटिला देकर—”

मौसीने कहा—क्या बताऊँ, बेटा, छोरी ऐसा करम कर बैठी है कि अपने आदमीके सिवा गैरको बुलानेसे भी रहे !

प्रियनाथ गरम होकर बोले—मेरे रहते गैर धुसेगा इस घरमें डाक्टरी करने ! पर ऐसा है न मौसी, इस बीमारीमें जरा समय लगता है,—पर यह भी कहे देता हूँ, दांसे ज्यादा रेमिडी भी मैं नहीं देनेका। क्यों ज्ञानदा, जी मचलाना मेरी दो ही बूंदोंसे बन्द हो गया या नहीं ? ठीक ठीक बताना ?

ज्ञानदाका झुका हुआ माथा मानो बिलकुल ही जमीनमें समा जानं लगा। उसकी तरफसे रासमणिने कहा—तुम्हारा सिवा यह और किसीका एतबार नहीं करती, बेटा, तुम्हारी दवा तो मानो इसके लिए धन्वन्तरी है ! मगर बीमारी तो जो तुम समझते हो, सो नहीं है प्रियनाथ। तकदीरके फेरसे अभागीकी बीमारी कुछ उल्टी है !

प्रियनाथने हाथ उठाकर कहा—उल्टी नहीं मौसी, उल्टी नहीं। विपिनके हाथ पड़ती तो ठीक वैसी ही हो जाती, पर अब कोई डर नहीं, मैं हूँ प्रियनाथ !

रासमणिने तकदीरपर हाथ ठोंकते हुए कहा—तुम बचा दा तो सचमुच ही डरकी कोई बात नहीं, मगर सत्यानासिनी इधर जो सत्यानास कर बैठी है ! अब इसका कोई दवाई देकर उद्धार करो, नहीं तो कुलमें कालिख लगानेकी नौबत आ पहुँची है, बेटा !

परन्तु, डाक्टरके चेहरेकी ओर देखकर मौसीको जब यह महसूस हुआ कि इतने बड़े अनुभवी डाक्टरके सामने भी उसकी अन्तिम बात स्पष्टतया प्रकट न हुई, तो वह उसे प्रकट करनेके लिए प्रियनाथको एक कोनेमें ले गई, और उसके कानमें कुछ कहने लगी। सुनते ही प्रियनाथ चौंक पड़े—कहती क्या हो मौसी ? ज्ञानदा ?—

मौसीने कहा—क्या बताऊँ बेटा, भाग्यके लेखको कौन मिटा सकता है, बताओ ? अब दो कोई दवाई, जिससे गोलोक चटर्जीका ऊँचा सिर नीचा न होने पावे । देश-भरका मस्तक है, समाजका शिरोमणि । मरद ठहरे,—उनका क्या दोष है, बेटा ? पर, उनके घरमें आकर इस छोरीको क्या सूझी जो इतनी निर्लज्जता की, बताओ भला ?

प्रियनाथका चेहरा फक पड़ गया । एक बार उन्होंने ज्ञानदाका मुँह देखनेकी कोशिश की, उसके बाद धीरे धीरे कहा—तुम, बल्कि, विपिन डाक्टरको खबर भेजो । मौसी, ये सब दवाएँ मेरे पास नहीं रहतीं ।

इतना कहकर वे झुकके अपना बॉक्स और किताबें उठाने लगे ।

रासमाणिने आश्चर्यके साथ कहा—कह क्या रहे हो तुम, प्रियनाथ, यह बात क्या और पाँच कानों तक पहुँचाई जा सकती है ? चाहे कुछ भी हो, तुम अपने आदमी हो, और विपिन डाक्टर गैर है,—सूदर है;—ब्राह्मणकी इज्जत क्या उसके आगे उधाड़ी जा सकती है ?

परन्तु, प्रियनाथके जवाब देनेसे पहल ही सहसा दरवाजा खोलकर चुपकसे गोलोक भीतर चले आये, और प्रियनाथका बायाँ हाथ दबाकर विनतीके स्वरमें बोले—ज़हरके डरसे वह जो और किसीकी दवा पीना नहीं चाहती, बेटा, नहीं तो तुम्हें तकलीफ न देता । इस विपत्तिसे तुम्हें उद्धार करना ही पड़ेगा, प्रियनाथ !

प्रियनाथने हाथ छुड़ाकर कहा—नहीं, नहीं, इन सब गन्दे कामोंमें मैं नहीं रहता,—मैं मरीज देखता हूँ, रेमिडी सिलेक्ट करता हूँ, बस । विपिन-फिपिनको बुलाकर सलाह कीजिए, इन सब मामलोंमें मैं कुछ जानता-आनता नहीं !

इतना कहकर फिर एक बार उन्होंने किताबें बगलमें दवांनकी तैयारी की ।

गोलोक फिर उनका हाथ अपने हाथमें लेकर लगभग रोकनेके स्वरमें कहने लगे—प्रियनाथ, बूढ़ आदमीकी बात रख दे, बेटा । रिश्तेमें मैं तुम्हारा ससुर लगता हूँ,—तुम मेरी बात न रखोगे यह जानता, तो मैं तुमसे हरगिज़ न कहता ! दुहाई है बेटा, कोई उपाय कर दो,—तुम्हारी ठोड़ी छूता हूँ—

प्रियनाथने फिर अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—रिश्तेमें ससुर लगते हैं, सो क्या आपके कहनेसे मैं जीव-हत्या करूँ ? आप तो अच्छे आदमी मालूम होते हैं ! परलोकमें क्या जवाब दूँगा ?

गोलोक दरवाजेके पास खिसक गये । उनके चेहरेका रुख, आँखोंका भाव, गलेका स्वर,—सब-कुछ मानो अद्भुत जादू-बलसे पल-भरमें परिवर्तित हो गया । कर्कश कंठसे पूछ उठे—इतनी रातमें तुम एक शरीफके घरके अन्दर घुसे क्यों ? यहाँ तुम किस कामसे आये हो ?

प्रश्न सुनकर प्रियनाथ सिर्फ विस्मित ही नहीं हुए, बल्कि हतबुद्धि हो गये, बोले—किस कामसे ? वाह,—यह खूब रहा ! इलाजके लिए किसने बुलवाया था ? वाह —

गोलोक एकाएक चीत्कार कर उठे—वाह ! इलाज तू क्या जानता है रे, हराम-जाद लुचे ? किसने तुझे बुलाया था ? कहाँसे तू भीतर घुसा ? पिछवाड़ेका दरवाजा किसने तुझे खोल दिया ?

फिर ज्ञानदाकी ओर घूमकर बोले—हरामजादी ! इसीसे अन्धा ससुर रो-रोकर चला गया, गई नहीं ! बूढ़ी सास मर रही है,—मैंने खुद इतना कहा, ज्ञानदा, जाओ, इस समय उनकी सेवा करो जाकर । किसी भी तरह गई ही नहीं, इसी लिए ? आधी रातको इलाज करानेके लिए ? ठहर, हरामजादी, कल ही अगर, तेरा सिर मुड़ाकर गाँवके बाहर न निकलवा दिया, तो मेरा नाम गोलोक चटर्जी नहीं !

ज्ञानदाकं माथपर कपड़ा नहीं,—कब खिसक गया, उसे मालूम ही नहीं हुआ,—मुँहमें बात नहीं,—सिर्फ दोनों आँखें फाड़-कर वह जैसे पत्थर हो गई ।

गोलोकने रासमणिकी ओर देखकर कहा—रास, अपनी आँखोंसे देख तो लिया इन लोगोंका करम ? मैं दस गाँवोंकी समाजका सरपंच हूँ, मेरे घरपर यह पाप ? यह तो शेरके घर घोगेका \* बासा हो गया री !

रासमणि खुद भी अब तक सिकुड़ी-सी बैठी थी, बोली—हो ही तो गया, भइया !

गोलोकने कहा—लेकिन, तू गवाह रही ।

रासमणिने कहा—रही क्यों नहीं ! मैंने कहा, रातको जरा हाथ खाली हुए हैं,—देख आज्ञे ज्ञानदा कैसे है । यहाँ देखा तो खूब मजेसे दोनों बैठे बैठे हँसी-मजाक गप-शप कर रहे हैं !

ज्ञानदाने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसी तरह फटी हुई आँखोंसे पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठी रही।

प्रियनाथ बेचारा आच्छन्न अभिभूत-सा खड़ा था, गोलोकने झपट्टा मारकर उसके हाथसे किताबें छीन लीं, और गलेमें जोरका एक धक्का मारकर कहा— निकल बदमाश पाजी लुचे यहाँसे ! क्या कहूँ तुझसे, रामतनु बनर्जीका दामाद है, नहीं तो मारे जूतोंके तुझे अधमरा करके थानेमें भिजवा देता !

इतना कहकर फिर एक धक्का दिया, और शोर-गुल सुनकर नौकर-चाकर जो बरंडेमें आकर जमा हो गये थे, उनके बीचमेंसे होकर बार-बार धकेलते-ठेलते हुए उसे बाहर ले गये।

प्रियनाथके मुँहसे वही एक बात निकल रही थी - वाह ! यह खूब रहा !

नौकर-चाकर दाई-महरी सब साथ-साथ बाहर चल दिये, और रासमणि भी उन्हींके पीछे पीछे जाकर चुपकेसे अपना किनारा कर गई।

रह गई अकेली ज्ञानदा। वह उसी तरह निश्चल, उसी तरह वाक्यहीन, उसी तरह अचेतन मूर्तिके समान बैठी रही।



## १२

**आ**ज दिन-भर कभी पास और कभी दूरसे शहनाईका करुण राग सुनाई देता रहा है। अगहनके आजके दिनके सिवा फिर बहुत दिनों तक कोई सहालग नहीं; इसीसे, शायद इस छोट-से गाँवमें भी आज चार-पाँच घरोंमें ब्याहकी तैयारियाँ चल रही हैं। संध्याका भी आज ही ब्याह है।

नाना कारणोंसे अरुण अब तक अपने मकान और जन्म-भूमि त्यागनेके संकल्पको कार्य-रूपमें परिणत नहीं कर सका। पहलेंकी तरह उसने अपना काम-काज करना भी फिर शुरू कर दिया है। बाहरसे उसके जीवनमें कोई परिवर्तन नजर नहीं आता; किन्तु, जरा गौरसे देखनेसे ही पता चल जाता है कि अपन देशके प्रति उसका समता-बोध बिलकुल ही जाता रहा है। जिन सब हितकारी अनुष्ठानोंके साथ उसका अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध था, वे सब मानो उतनी ही दूर हट गये हैं। गाँवमें वह 'छिका हुआ' समझा जाता है, इसीसे इतने घरोंमें ब्याह होते हुए भी कहींसे उसके लिए न्योता नहीं था,—सामाजिकता रखनेके

लिए उसे कहीं भी जाना नहीं था,—आज सभी घरोंके दरवाजे उसके लिए बन्द थे ।

संध्याके बादसे वह अपने दुमँजिले-वाले पढ़नेके कमरेमें चुपचाप अकेला बैठा था । जाड़ोंकी ठंडी ठंडी हवा चल रही है । परन्तु, फिर भी घरके दरवाजे-जंगले बन्द नहीं किये गये हैं,—सब-कें-सब खुले पड़े हैं । निर्मेष निर्मल आकाश एक छोरसे लेकर दूसरे छोर तक त्रयोदशीके चन्द्रमाकी चाँदनीमें बहा जा रहा है,—उसीका एक टुकड़ा पीछेकी खुली खिड़कीमेंसे भीतर आकर उसके पैरोंपर फैल गया है । उसके सामनेवाले खुले बरामदेके पास ही, एक छोटे नारियलके पेड़की चोटीपर, पत्तों-पत्तोंपर चाँदनीका उजेला पड़कर झकमक झकमक कर रहा है । वह उसीकी तरफ अर्द्ध-निद्रातुरकी भाँति देखता हुआ क्या क्या सोच रहा था, इसका कोई ठिकाना नहीं । रसोइया भोजनके लिए कहने आया तो उसने ‘ भूख नहीं ’ कहकर उसे विदा कर दिया, और दीवारपर अँधेरेमें टँगी हुई घड़ीने ग्यारह बजाकर उसके सोनेका समय बता दिया, तो भी आज उसे वहाँसे हिलनेकी इच्छा न हुई,—जैसे बैठा था, वैसे ही चुपकी साधे स्थिर बैठा रहा ।

सहसा उसके कानोंमें सदर-दरवाजेपर कराघातका शब्द और दूसरे ही क्षण उसके खुलनेका शब्द भी सुनाई पड़ा । एक बार इच्छा हुई कि पुकारकर कारण पूछे; क्योंकि, गँवई-गाँवमें इतनी रात बीते कोई किसीके घर नहीं जाता; परन्तु, उद्यमके अभावसे उससे कुछ पूछा नहीं गया ।

परन्तु, ज्यादा देरतक सोचना न पड़ा । कुछ ही क्षण बाद दरवाजेके पास रेशमी साड़ीका प्रबल खस-खस शब्द सुनाई दिया और उसके साथ-ही-साथ कोई स्त्री औंधीकी तरह घरमें घुसकर उसके पैरोंके पास औंधी होकर पड़ गई ।

अरुण घबराकर झटपट उठके खड़ा हो गया, देखा—चन्द्रमाकी चाँदनीमें उसके रंगीन पट-वस्त्र चमक रहे हैं । यह कौन है, इस बातका पल-भरमें अनुभव करके मारे भय और आश्चर्यके उसी क्षण उसकी छातीके भीतरका खून सूख गया । वह क्या कहे, क्या करे, कुछ भी न सोच सका ।

परन्तु, उसके लिए भी समय न रहा । एक भयानक मर्मान्तिक दबे हुए रोनेने अकस्मात् घरकी हवा, घरके अन्धकार और म्लान प्रकाश, घरमें जो कुछ था,—सबको, एकसाथ पल-भरमें चीरकर खण्ड-खण्ड कर दिया ।

दो-तीन मिनट तक हतबुद्धि-सा चुपचाप रहकर अरुणने जरा हटकर खंडे होकर पूछा—बात क्या है संध्या ?

संध्याने मुँह उठाकर देखा। ब्याहकी रंगीन रेशमी पोशाकके साथ साथ उसके सारे अंगोंके गहने चाँदनीमें चमचमाने लगे, सुन्दर ललाटपर चन्द्र-रश्मि पड़नेसे चन्दनकी पत्र-लेखा दीप्त हो उठी, और उसीके जरा नीचे आँसू-भरी बड़ी बड़ी दो आँखें झलमलाने लगीं। नारीका ऐसा रूप अरुणने पहले कभी नहीं देखा, मानो वह बिलकुल मुग्ध हो गया।

संध्याने कहा—अरुण-भइया, मैं ब्याहकी पटलीपरसे भाग आई हूँ तुम्हें ले चलनेके लिए। आज मुझे न लज्जा रही है, न भय,—मान-अपमानका भी ध्यान नहीं रहा,—तुम्हारे सिवा आज दुनियामें मेरा और कोई नहीं है,—तुम चलो।

“कहाँ जाऊँ ?”

“जहाँसे अभी तुरन्त ही एक उठकर चला गया है,—उसी आसनपर।”

अरुण मन-ही-मन अत्यन्त आहत हुआ। माजरा क्या हुआ है, वह समझ गया। किसी बातपर झगड़ा हो जानेपर वर-पक्षके लोग ज़बरदस्ती वरको उठा ले गये हैं। हिन्दू समाजमें ऐसी दुर्घटनाओंकी कमी नहीं,—इसीसे, उस दूसरेके परित्यक्त आसनपर अकस्मात् उसकी बुलाहट हुई है। जैसे भी हो, आज संध्याका ब्याह होना ही चाहिए।

परन्तु, स्वयं चोट खानेपर भी अरुण बदलेमें चोट न पहुँचा सका; बल्कि, सस्नेह भर्त्सनाके कंठसे बोला—छिः—तुम्हारा खुद आना उचित नहीं हुआ। ऐसा तो अकसर हुआ ही करता है,—तुम्हारे बाबूजी या और कोई आ सकता था।

“बाबूजी ? बाबूजी तो डरके मारे न-जाने कहाँ छिप गये हैं। मा तालाबमें कूद पड़ी थीं, उन्हें पकड़-पकड़ाकर निकाला गया है। मैं उसी समय तुम्हारे पास दौड़ी चली आई। ओफ्,—इतना बड़ा सत्यानास क्या दुनियामें और किसीका हुआ है ? हम लोग जीयेंगे किस तरह ?

उसके अन्तिम शब्दोंसे अरुणको फिर चोट पहुँची। बोला—पर मेरे द्वारा तो तुम लोगोंके कुलकी रक्षा होगी नहीं संध्या, मैं जो बहुत छोटा बाम्हन हूँ। परन्तु, देशमें और भी अनेक कुलीन हैं,—तुम्हारे बाबूजी शायद अब तक उसीकी खोजमें गये होंगे।

संध्याने रोते हुए कहा—नहीं नहीं, नहीं अरुण-भइया,—वे डरके मारे भाग गये हैं। मुझे अब कोई भी न लेगा—कोई नहीं ब्याहेगा। सिर्फ तुम मुझे प्यार करते हो,—सिर्फ तुम्हीं मेरी हमेशाकी इज्जत बचा सकते हो, बचाओ !

उसकी भयानक उच्छृंखल अवस्थासे अरुणको दुःख हुआ, हाथ पकड़कर उठानेकी कोशिश करते ही संध्याने बाधा देते हुए कहा—नहीं, मैं नहीं उठूँगी,—जबतक बस चलेगा, तुम्हारे पैरोंके पास ही पड़ी रहूँगी। कुलकी रक्षा न होगी, कह रहे थे ? किसका कुल अरुण भइया ? मैं तो ब्राह्मणकी लड़की नहीं हूँ,—मैं नार्इकी लड़की हूँ। सो भी अच्छी लड़की नहीं। अब मेरे हाथका छुआ पानी कोई नहीं पीयेगा। ओफ् ! इतनी बड़ी सजा मुझे क्यों दी भगवान् ! मैंने तुम्हारा क्या किया था !

अरुण चौंक पड़ा। उसे सहसा ऐसा मालूम हुआ, संध्या शायद होश-हवासमें नहीं है। हां न हां, यह सब उसके गरम मस्तिष्ककी भयानक और विकृत कल्पना है। हो सकता है कि यह सब कुछ भी न हुआ हो,—वह भाग आई है,—परपर उसके अबतक उथल-पुथल मच गई होगी ! उसे शान्त करके घर भेजनेके अभिप्रायसे अरुणने स्नेहके साथ उसके सिरपर हाथ रखकर धीरे धीरे कहा—अच्छा, चलो संध्या, तुम्हें घर ले चलूँ।

संध्याने घुटने टेककर प्रणाम करके उसके पाँवकी धूल माथेसे लगाकर कहा—चलो। तुम जाओगे, इस बातको मैं जानती थी। लेकिन मेरी सारी बातें सुनकर तब चलो,—नहीं तो मालूम नहीं, तुम भी शायद,—क्या कहा था तुमसे एक दिन ? छोटे ब्राह्मण न ? आज, शायद, सिर्फ उसीके पापसे ही प्रमाणित हो गया, मैं ब्राह्मणकी लड़की नहीं हूँ ! उफ्,—जीऊँगी कैसे मैं अरुण-भइया ?

उसकी मानसिक वेदनाका परिमाण देखकर अरुणका मन फिर दुविधामें पड़ गया। उसे मालूम हुआ, हो सकता है कि वास्तवमें ही कुछ हुआ हो,—शायद वह सच्ची घटनाका ही वर्णन कर रही है ! आहिस्तेसे उसने पूछा—किसने यह बात प्रमाणित की ?

“ किसने ? गोलोक चटर्जीने ! हाँ, उसीने। उसने मुझसे क्या कहा था, जानते हो ? नहीं जानते ? अच्छा खैर, जाने दो उस बातको। मा मुझे सम्प्रदान करने बैठी थीं, मेरी दादी चुपचाप खड़ी थीं। इतनेमें मृत्युंजय घटक दे

आदमियोंको साथ लेकर वहाँ आ पहुँचा। एक आदमीने दादीको बुलाकर कहा, 'तारा जीजी, हम लोगोंको पहचानती हो?' एक आदमीने मेरी माको दिखाकर कहा, 'तुमने लड़केका ब्याह करके इस ब्राह्मणकी लड़कीकी जात तो मारी ही थी,—अब फिर नातिनीका ब्याह करके इन लोगोंकी जात क्यों मार रही हो?' उसके बाद, बाबूजीकी तरफ उँगली दिखाकर, सब लोगोंसे कहा, 'तुम सब कोई सुन लो, इस तुम परम कुलीन प्रियनाथ मुखर्जी समझते हो,—पर यह ब्राह्मण नहीं है, यह हीरू नाईका लड़का है!'

अरुण कहने लगा—यह सब तुम क्या बके जा रही हो, संध्या?

परन्तु, संध्याने शायद इस प्रश्नको सुना ही नहीं,—वह अपनी बातका सिलसिला रखकर कहने लगी—मृत्युंजय घटकने गंगाजलका घड़ा दादीके सामने रखकर पूछा,—बताइए यह बात सच है कि नहीं? कहिए, यह किसका लड़का है? मुकुन्द मुखर्जीका है, या हीरू नाईका? बताइए?—अरुण-भइया, मेरी संन्यासिनी दादी सिर झुकाये बैठी रहीं, किसी भी तरह झूठ न बोल सकीं। ओ जी! यह सच है, यह सत्य है, यह भयंकर सत्य है! सचमुच ही हम लोगोंको तुम जैसा समझते थे, वैसे हम नहीं हैं! तुम्हारी संध्या ब्राह्मणकी लड़की नहीं है!

अरुणके मनमें अब संशयका लेशमात्र भी बाकी न रहा, वह वज्राहतकी भाँति सिर्फ स्तब्ध होकर खड़ा रहा।

संध्याने कहा—एक आदमीने तब सारी घटना कह सुनाई। वह उनके गाँवका आदमी था। कहा कि आठ सालकी उमरमें दादीका ब्याह हुआ था, उसके बाद चौदह-पन्द्रह साल बाद एक आदमी आया और अपनेको दामाद मुकुन्द मुखर्जी बताकर घरमें रहा। पाँच रुपया और एक कपड़ा भेंटमें लेकर और दो दिन रहकर वह चला गया। उफ्,—भगवान्!

अरुण उसी तरह निर्वाक् और निश्चल हाँकर बैठा रहा।

संध्याने कहा—क्या कह रही थी, अरुण-भइया? हाँ हाँ,—याद आ गया। उसके बादसे ही वह आदमी अकसर आने-जाने लगा। दादी बहुत सुन्दर थीं, उसके बाद उसने दक्षिणा लेना छोड़ दिया। एक दिन जब अचानक सब भेद खुल गया, तब बाबूजीका जन्म हो चुका था! उफ्,—मैं मा होती, तो नटई दबाकर उसी वक्त मार डालती,—बड़ा न होने देती। हाँ, क्या कह रही थी मैं?

अरुणने अस्फुट स्वरमें कहा—भेद खुल गया ।

संध्या कहने लगी—हाँ हाँ, ठीक है । भेद खुल गया । तब उसने क्या कबूल किया, जानते हो ? कहा कि यह कुकर्म उसने अपनी इच्छासे नहीं किया, बल्कि अपने मालिक मुकुन्द मुखर्जीकी आज्ञासे किया है । एक तो वे वैसे ही बूढ़े आदमी, उसपर पाँच-सात वर्षसे गाठियामें पड़े थे, इसलिए उन्होंने अपरिचित स्त्रियोंके यहाँसे रुपये वसूल करनेका भार देकर हीरू नाईसे कहा कि तू ब्राह्मणका परिचय कंठस्थ कर डाल, एक जनेऊ बना रख, अबसे जो-कुछ रोजगार करके लायेगा, उसमेंसे तुझे आधा हिस्सा मिला करेगा !

अरुण चौंक उठा, बोला—ऐसा काम उसने और भी कहीं किया था क्या ?

संध्याने कहा—हाँ, और भी दस-बारह जगहसे वह इसी तरह अपने मालिकके लिए रोजगार कर लाया करता था ! उसने और भी क्या कहा था, जानते हो ? कहा था कि यह काम कुछ नया नहीं है, और सिर्फ उसीके मालिक ऐसा करते हों, सो बात भी नहीं है,—ऐसे बहुतसे कुलीन ब्राह्मण हैं जो दूरके मामलोंमें औरोंकी साझेदारीसे काम चलाते हैं !

अरुण मारे गुस्तेके गरजकर बोला—सच ही होगा ! नहीं तो, ब्राह्मण-कुलमें गालोक जैसे कसाई क्यों पैदा होते ? और मजा यह कि यही लोग सारे हिन्दू-समाजके माथेपर बैठे हुए हैं ।—हाँ, फिर उसके बाद ?

“ उसके बाद दादी मेरे बाबूजीको लेकर काशी चली गईं । तबसे वे संन्यासिनी हैं,—तबसे कहीं भी उन्होंने अपना मुँह नहीं दिखाया ! ”

संध्या फिर कहने लगी—हीरूने शायद पूछा भी था कि,—पंडितजी, परलोकमें मैं क्या जवाब दूँगा ? उसके मालिकने कहा था,—वह पाप मेरे ऊपर है, उसका जवाब मैं दूँगा । हीरूने पूछा था,—और उन बेचारियोंकी गति क्या होगी, पंडितजी ?

“पंडितजीने हँसते हुए ही जवाब दिया था, ‘वे मेरी स्त्रियाँ हैं, तेरी नहीं । तुझे इतना दर्द क्यों ? जिन्हें आँखोंसे कभी देखा नहीं, न देखूँगा, उनकी गति क्या होगी, क्या न होगी, इसकी चिन्ता करनेकी क्या तो मुझे जरूरत और क्या तुझे ! हमें चिन्ता है रुपयोंकी ! ’ अरुण-भइया, इसीसे उस दिन मेरी दादीने तुम्हारी चर्चा आनेपर रोकर कहा था,—‘संध्या, जातमें कौन छोटा है और कौन बड़ा, इस बातको सिर्फ भगवान् ही जानते हैं,—मनुष्यको तो कभी किसीको हीन

जातिका समझकर घृणा करनी ही न चाहिए। पर, तब मैंने नहीं सोचा था कि उसके मानी, आज,—इस तरह, समझने होंगे ! लेकिन रात जो ज्यादा हुई जा रही है,—मुझे लेकर तुम्हें कभी भी दुःख न उठाना पड़ेगा, अरुण-भइया, तुम्हारे महत्त्व, तुम्हारे त्यागको मैं जीवन-भर न भूलूँगी।

इतना कहकर वह निर्निमेष दृष्टिसे देखती रही।

अरुणने अनिश्चित कंठसे संकोचके साथ कहा—पर, अभी तो तुम्हारे साथ मैं जा नहीं सकता, संध्या।

संध्याने चकित होकर कहा—क्यों ? तुम संग न चलोगे तो मैं खड़ी कहाँ होऊँगी ? मैं जीऊँगी कैसे ?

इस आकुल प्रश्नका उत्तर अरुणको सहसा ढूँढ़े न मिला; उसके बाद, अत्यन्त धीरेसे वह बोला—आज मुझे क्षमा करो संध्या,—मुझे जरा सोच लेने दो।

“सोचोगे ?” यह कहकर संध्या अवाक् होकर एकटक अरुणकी ओर देखती हुई, अन्धकारमें, जहाँ तक दिखाई दिया, उसका चेहरा देखनेकी कोशिश करने लगी। उसके बाद एक गहरी साँस लेकर धीरेसे उठकर बोली—अच्छा, सोचो। जरा नहीं, सोचनेका समय तो शायद जीवन-भर पाओगे। इतने दिनों तक मैंने भी सोचा है,—दिन-रात सोचती ही रही हूँ ! जब अपने निकट मैं तुम्हें बहुत छोटा समझनेमें हिचकी नहीं, तबसे यही बात सोची है ! आज अब तुम्हारे सोचनेकी पारी आई है। अच्छा, तो मैं चली—

इतना कहकर ज्यों ही वह उठके खड़ी हुई, त्यों ही उसके अंगका सुदीर्घ अंचल स्वलित होकर नीचे गिर गया। उसे उठाकर धीरेसे यथास्थान रखते हुए अब उसकी निगाह अपने ऊपर पड़ी। अकस्मात् सिहरकर बोली—भगवान् ! ब्याहकी यह रंगीन पोशाक, शरीरके ये गहने, माथेका यह बधू-चन्दन,—यह सब पहनते समय ये सब बातें किसने सोची थीं !

कहते कहते उसका कण्ठ रेंध आया। उसी रेंधे हुए गलेसे वह बोली—“मैं विदा होती हूँ, अरुण-भइया !”

इतना कहकर फिर एक बार प्रणाम करके वह चुपचाप बाहर निकल गई।

अरुण निश्चल होकर खड़ा रहा। परन्तु ज्यों ही संध्या उसकी दृष्टिसे बाहर अन्तर्हित हुई, त्यों ही सहसा मानो उसकी आँखें खुल गईं, और वह व्यग्र व्याकुल कंठसे नौकरको बार-बार बुलाकर कहने लगा—शिबू, जा जा, साथ जा !

कहते-कहते वह स्वयं ही उसके पीछे पीछे दौड़ा चला गया।



## १३

बायें हाथमें दिया लिये हुए प्रियनाथ बॉक्समेंसे कुछ चीजें निकाल-निकालकर एक कपड़ेमें रख रहे थे, इतनेमें सहसा पीछेसे आवाज़ सुनाई दी—‘ बाबूजी ! ’

वे अपना काम छिपे तौरसे कर रहे थे, हड़बड़ाकर हाथका दिया नीचे रखकर खड़े हो गये, बोले—कौन, संध्या ? अभी लो बेटी, जा रहा हूँ,—अब देर नहीं है—

संध्याने बड़ी मुश्किलसे आँसू रोकते हुए कहा—क्या कर रहे थे बाबूजी ? प्रियनाथ घबड़ाकर बोले—मैं ? नहीं तो,—कुछ भी तो नहीं कर रहा था, बेटी ।

उस कपड़ेको दिखाकर संध्याने पूछा—उसमें क्या है बाबूजी ?—क्या रख रहे थे ?

भेद खुल जानेसे प्रियनाथ अत्यन्त लज्जित हो उठे; कुछ-कुछ बिनतीके स्वरमें कहने लगे—थोड़ी-सी,—ज़्यादा नहीं बेटी, रोमिडी साथमें ले रहा था,—और उस ‘ मेडिरिया मेडिका ’ को,—बड़ी नहीं छोटी,—फट-उट भी गई है,—अनजान जगह होगी,—जो हो, थोड़ी-बहुत प्रैक्टिस तो करनी ही होगी ? इसीसे सोचा कि—

“ मा क्या तुम्हें इतना भी देना नहीं चाहती, बाबूजी ? ”

प्रियनाथने अनिश्चित-भावसे सिर हिलाकर क्या प्रकट करना चाहा, कुछ समझमें न आया ।

“ तुम कहाँ प्रैक्टिस करोगे बाबूजी ? ”

“ वृन्दावनमें । वहाँ कितने ही यात्री आया जाया करते हैं—उन्हें दवा देनेसे क्या महीनेमें चार-पाँच रुपये भी न मिलेंगे, संध्या ? उसीसे अच्छी तरह मेरी गुजर हो जायगी । ”

“ सो खूब मिल जायेंगे बाबूजी, तुम और भी ज़्यादा पैदा कर लोगे । मगर, वहाँ तो तुम किसीको जानते ही नहीं । परसों जब रात बीते दादी काशी गई थीं, तब उनके साथ तुम क्यों नहीं चले गये बाबूजी ? ”

“ माके साथ ? काशी ? नहीं बेटी, अपने साथ मैं और किसीको भी नहीं

लपेटना चाहता। मेरे कारण तुम लोगोंने बहुत दुःख पाया है, अब मैं किसीको दुःख न दूँगा। जितने दिन जीऊँगा, उस अनजान जगहमें अकेला ही रहूँगा।”

संध्याने पिताकी छातीके पास आकर उनके दोनों हाथ अपने हाथोंमें लेकर कहा—पर, मैं तो तुम्हें अकेला नहीं रहने दूँगी बाबूजी, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।

प्रियनाथने धीरे धीरे अपने हाथ छुड़ा लिये और कन्याके सिरपर हाथ रखकर हँसते हुए कहा—अरी पगली, तू भी कहीं होता है ? मेरे साथ कहाँ जायगी, बिटिया ? तू अपनी माके पास रह, उसने भी बहुत दुःख उठाये हैं। और मेरा नाम लेकर जो दवा माँगने आवें, उन्हें दवा देना। और सुना संध्या, मेरी किताबें अगर तुम्हारी मा दे, तो विपिनको दे देना। वह बेचारा गरीब है, किताबें न खरीद सकनेके कारण बेचारा कुछ सीख नहीं पाता।

संध्याने सिर हिलाकर कहा—नहीं बाबूजी, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी ही। यह देखो न, अपने रोजके पहननेके कपड़े मैंने अँगौलियोंमें बाँध लिये हैं।

यह कहकर उसने आँचलके भीतरसे एक छाटी-सी पोटली निकालकर दिखाई।

प्रियनाथ कभी ज़यादा प्रतिवाद न कर सकते थे, वे राजी होकर बोले—अच्छा तू चल। पर, तेरी माका बहुत दुःख होगा, संध्या !

कल सबके सामने, समाजके सोलह-आने लोगोंके सामने, पिताकी दुर्गति उसने अपनी आँखों देखी है। जगद्धात्रीका अपना मकान था, इसीसे इतना संभव हो सका,—यह अपमान संध्याकी हड्डी-हड्डीमें चुभ चुका था। परन्तु, प्रत्युत्तरमें उसने उस बातका कोई उल्लेख नहीं किया, वह बार-बार सिर हिलाकर सिर्फ यही कहने लगी—मैं जाऊँगी ही। मैं साथ न रहूँगी तो तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा ? कौन तुम्हें बनाकर खिलायेगा ?

यह कहकर उसने झटपट बाबूजीकी दवा और किताबें कपड़ेमें बाँध लीं, और उनका हाथ पकड़कर कहा—हम लोग इसी समय निकल चलें, नहीं तो, बारह बजेकी गाड़ी शायद न मिल सकेगी।

माके बन्द दरवाजेकी चौखटपर संध्याने माथा टेककर प्रणाम करके कहा—मा, हम लोग जा रहे हैं ! सिर्फ पहननेकी दो धोतियोंके सिवा मैंने तुम्हारा और कुछ भी नहीं लिया है।

यह कहते कहते वह रो पड़ी। परन्तु, भीतरसे कोई जवाब नहीं आया। झटपट आँचलसे आँखें पोंछकर उसने फिर कहा—मा, कलंक और घृणाकी सारी स्याही अपने मुँहपर पोतकर ही हम लोग बिदा हो रहे हैं,—तुम्हारे समाजमें इसका न्याय नहीं होगा,—पर, जिनके महापातकका बोझ लादकर हम लोगोंको जाना पड़ रहा है, उनका न्याय करनेवाले भी एक हैं,—आखिर, उन्हें तो एक दिन पता लग ही जायगा।

फिर भी, घरके भीतर उसी तरह सन्नाटा रहा,—किवाड़ उसी तरह बन्द ही रहे। संध्या पिताके पीछे पीछे घरसे निकल गई। कोई एक आदमी पास ही पेड़के नीचे खड़ा था, उसके पास आते ही प्रियनाथने चाँदनीके उजालेमें उसे पहचानकर कहा—कौन, अरुण हो क्या ?

अरुणने कहा—जी हाँ। आज आप बारह बजेकी गाड़ीसँ जानेवाले हैं,—सुनकर मैं मिलने आया हूँ।

प्रियनाथने कहा—हाँ। और यह देखो न कैसी मुश्किल है, लड़की किसी तरह छोड़ती ही नहीं,—साथ चलनेको तैयार है। मैं कहाँ जाऊँगा, कहाँ रहूँगा, कोई ठीक थोड़े ही है,—देखो तो इसका पागलपन !

अरुण दंग रह गया, बोला—संध्या, तुम भी जाओगी ?

संध्याने सिर्फ यही जवाब दिया—हाँ।

अरुणने क्षण-भर मौन रहकर अत्यन्त संकोचके साथ कहा—उस दिन रातको मैं किसी भी तरह मनको स्थिर न कर सका था; पर, आज निश्चय कर लिया है,—तुम्हारी बातपर राजी होता हूँ, संध्या।

प्रियनाथ, समझ न सकनेके कारण, सिर्फ देखते रहे। संध्याने शान्त कंठसे धीरे धीरे कहा—उस दिन, मैं भी बड़ी उतावली हो गई थी अरुण-भइया, पर, आज मेरा भी मन स्थिर हो गया है। स्त्रियोंके लिए ब्याह करनेके सिवा दुनियामें और कोई काम है या नहीं, यही जाननेके लिए मैं बाबूजीके साथ जा रही हूँ। पर, अब तो ठहरनेका समय नहीं है, अरुण-भइया,—कर सको तो हम लोगोंको क्षमा कर देना।

इतना कहकर संध्या पिताका हाथ पकड़कर आगे बढ़ गई। अरुण भी जब साथ साथ चलने लगा, तब संध्याने मुड़कर कहा—नहीं अरुण-भइया, तुम हमारे साथ नहीं आ सकते, तुम घर जाओ।

अरुणने कहा—संध्या, ऐसे कष्टके समय तुम अपनी माको छोड़े जा रही हो ?

संध्याने कहा—क्या करूँ अरुण-भइया, इतने दिनोंतक पिता-माता दोनोंकी सेवा करनी बदी थी; पर, आज एकको छोड़ना ही पड़ेगा। माके लिए फिर भी कुछ-न-कुछ इन्तज़ाम है। कल बहुतेरे लोग तमाशा देखने आये थे, और उनमेंसे कोई कोई कह रहे थे कि कोई एक प्रायश्चित्त है, जिससे मा शुद्ध हो सकती हैं। है, तो अच्छा ही है। तब फिर, उन्हें देखने-भालनेवालोंकी भी कमी न रहेगी; पर, बाबूजीको तो मेरे सिवा और कोई भी सम्हालनेवाला नहीं दीखता दुनियामें। मगर अब खड़े मत हो, बाबूजी, चलो।

यह कहकर वे दोनों फिर आगे बढ़ने लगे, और अरुण वहीं स्तब्ध होकर खड़ा रहा।

थोड़ी दूर चलकर देखा कि कुछ लोग पूड़ियों, मछलियों और विविध प्रकारकी मिठाइयोंकी बारबार प्रशंसासे रस्तेको मुखरित करते हुए पान चबाते-चबाते घर लौट रहे हैं। आनन्द और परितुषिसे वे फूले नहीं समाते। चाँदनी रातमें कहीं वे पहचान न लें,—इस डरसे संध्या पिताका हाथ पकड़कर रास्तेके एक किनारे जा खड़ी हुई, और उनके निकल जानेपर फिर आगे चलने लगी।

आगे चलकर मोड़ पर घूमते ही उनके भूरि-भोजनका कारण समझमें आ गया। पासके आमके बागमें होकर गोलोक चटर्जीके मकानसे जोरका प्रकाश और उससे भी ज्यादा कोलाहल आ रहा था। पूड़ी लाओ, तरकारी इधर, दही कौन दे रहा है, मिठाई कहाँ है,—इत्यादि अनंक कंटोंकी आवाज़से सारा स्थान गूँज रहा था।

प्रियनाथने कहा—गोलोक चटर्जीका आज बहू-भात है न ! कर्म-काजमें चटर्जी खिलते-पिलते अच्छा हैं। सुना है कि पाँचों गाँव न्याते गये हैं,—ब्राह्मण शूद्र कोई घर छूटा नहीं है।

संध्याने आश्चर्यके साथ पूछा—किसका बहू-भात बाबूजी ? गोलोक-नानाका अपना ?

प्रियनाथने कहा—हाँ, प्राणकृष्णकी लड़कीके साथ परसों ब्याह हो गया न !

संध्याके मुँहसे सिर्फ इतना ही निकला—हरिमती ? उसका बहू-भात है ?

प्रियनाथने कहा—हाँ, हरिमती ही नाम है उसका। गरीब ब्राह्मण बच गया बेचारा,—लड़की बड़ी हो गई थी।—क्या है री ?

“ कुछ नहीं बाबूजी, चलो, हम लोग यहाँसे जरा जल्दी निकल चलें । ”

यह कहकर संध्या पिताका हाथ पकड़कर उन्हें लगभग घसीटकर स्टेशनकी ओर ले चली ।



पिताको लेकर संध्या जब स्टेशन पहुँची, तब गाड़ी आनेमें करीब आध घंटा देर थी । गाँवकी छोटी स्टेशन ठहरी, खास कर रातको लोग-बाग कम आते हैं,—सिर्फ प्लाटफार्मके एक किनारे कनेरके पेड़के अन्धकारकी छायामें कोई एक स्त्री अकेली बैठी थी, उसने इन्हें देखते ही सिटपिटाकर माथेका कपड़ा खींच लिया ।

प्रियनाथ हटकर खड़े हो गये; परन्तु, संध्याकी तीक्ष्ण दृष्टिको वह धोखा न दे सकी । संध्या मिनट-भर चुपचाप देखती रही; फिर, आश्चर्यके साथ बोली—ज्ञानदा जीजी, तुम यहाँ कैसे ? अकेली क्यों ?

संध्याने ठीक पहचाना था, ज्ञानदा उसी क्षण दोनों हाथोंसे उसे छातीसे लगाकर फफक-फफककर रोने लगी । सन्ध्याके आश्चर्यकी सीमा न रही । वह अपने ही दुर्भाग्यमें डूबी हुई थी—इसी बीचमें उसीके पासके मकानमें और एक अभागिनीका भाग्य किस अतल गहराईमें डूब गया, इसका उसे पता भी नहीं; परन्तु, प्रियनाथका चेहरा बिलकुल फफ पड़ गया ।

संध्याने कहा—तुम कहाँ जाओगी, ज्ञानदा-जीजी ?

ज्ञानदाके रूँधे हुए गलेसे आवाज़ न निकली, उसने सिर्फ सिर हिलाकर जतला दिया कि कहाँ जाना है, सो वह खुद नहीं जानती ।

इसके बाद बहुत देर तक किसीने कोई बात नहीं कही; पर, गाड़ीका वक्त होता जाता था,—टिकट खरीदना होगा,—इसलिए, प्रियनाथने बड़ी कोशिशसे गला खोलकर कहा—तुम कहाँ जाओगी, ज्ञानदा ? तुमने क्या टिकट खरीद लिया है ?

ज्ञानदाने उसी तरह सिर हिलाकर कहा—नहीं ।

उसके बाद अश्रु-विकृत कंठसे पूछा—आप कहाँ जायँगे ?

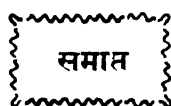
प्रियनाथने बताया—वृन्दावन ।

“ संध्या भी साथ जायगी क्या ? ”

प्रियनाथने कहा—हाँ ।

ज्ञानदाने, आँचलकी गाँठ खोलकर कुछ रुपये प्रियनाथके पैरोंके पास रख दिये, और कहा—टिकटके दाम कितने लगते हैं,—मैं नहीं जानती; पर, ये पचास रुपये मेरे पास हैं, मुझे भी एक वृन्दावनका टिकट ला दीजिए। सिर्फ रास्ते-भर आप मुझे अपने साथ ले चलिए, इससे ज़्यादा और मैं दुनियामें किसीसे कुछ न चाहूँगी।

प्रियनाथ कुछ देर तक चुप रहे, फिर अन्तमें धीरेसे बोले—अच्छा, चलो, हमारे ही साथ चलो।



# प्रकाश और छाया

शुरूमें ही अगर ज़बान पकड़ लो कि ऐसा कभी हो ही नहीं सकता, तब तो मैं लाचार हूँ । और अगर कहाँ कि, हाँ भी सकता है,—दुनियामें कितना क्या क्या होता रहता है, सभी-कुछ थोड़े ही जानता हूँ,—तो इस कहानीको पढ़ डालो । मेरा विश्वास है कि इससे किसी भी तरहकी कोई बड़ी हानि न होगी । और, कहानी लिखनेके लिए बैठते वक्त कुछ ऐसी प्रतिज्ञा तो कर ही नहीं ली है कि जो कुछ लिखूँगा, सब खालिस सत्य ही होगा । दो-एक लाइन गलत हो तो हो, थोड़ा-बहुत मत-भेद हो तो हो,—इससे ऐसा क्या बनता-बिगड़ता है ?—हाँ, नायिकाका नाम है यज्ञदत्त मुखर्जी,—मगर सुरमा उससे कहती है ‘ प्रकाश । ’ नायिकाका नाम तो सुन ही लिया, लेकिन यज्ञदत्त उसे ‘ छाया ’ कहकर पुकारता है । कुछ दिन तो उनमें भारी कलह रहा; कौन प्रकाश है और कौन छाया,— किसी भी तरह इसकी मीमांसा नहीं हुई । अन्तमें, सुरमाने समझा दिया,—तुम्हारी सूक्ष्म बुद्धिमें इतनी-सी बात नहीं आती कि तुम न हो तो मैं कहींकी भी नहीं; परन्तु, मेरे बिना रहे भी तुम चिरकाल चिरजीवी हाँ;—इसीसे तुम प्रकाश हो और मैं छाया ।

यज्ञदत्त हँस दिया—इकतरफ़ा डिग्री पाना चाहती हो, तो ले लो, मगर फ़ैसला किसी कामका नहीं हुआ ।

“ खूब हुआ है, बढ़िया हुआ है, बहुत अच्छा हुआ है,—प्रकाश, अब लड़नेकी ज़रूरत नहीं । तुम प्रकाश हो, मैं श्रीमती छाया हूँ । ”

कहती हुई छायाने नाना प्रकारसे प्रकाशको तंग कर डाला ।



कहानीका इतना तो हो गया । परन्तु, अब तुम्हीं लोगोंसे द्वन्द्व-युद्ध न हो जाय, यही डर है । तुम कहोगे, ये लोग स्त्री-पुरुष हैं; मैं कहूँगा,—स्त्री-पुरुष ज़रूर हैं,

पर पति-पत्नी नहीं हैं। जरूर ही तुम आँखें चढ़ा लोगे,—तो क्या अवैध प्रेम है ? मैं कहूँगा,—बहुत ही शुद्ध प्रेम है। तुम लोगोंको किसी भी तरह विश्वास नहीं होगा; मुँह बनाकर पूछोगे,—उमर क्या है ? मैं कहूँगा, प्रकाशकी उमर है तेईस सालकी और छाया है अठारहकी।

इसके बाद भी अगर सुनना चाहो, तो शुरू करता हूँ।

यज्ञदत्तके छोटी-सी छँटी हुई दाढ़ी, आँखोंपर चश्मा, सिरपर लेवेण्डरकी सुगन्ध, चुनी हुई ढाकेकी धोती, शर्टपर एसेन्स लगा हुआ, पैरोंमें मखमलके स्लीपर,—जिनपर छायाने अपने हाथसे फूल काढ़ दिये हैं,—लाइब्रेरीमें भर-घर पुस्तकें हैं और हैं घरपर अनेक दास-दासियाँ। टेबिलके किनारे बैठा हुआ यज्ञदत्त चिढ़ी लिख रहा है, सामने बड़ा-भारी आईना है। परदा हटाकर छायाने बड़ी सावधानीके साथ प्रवेश किया। उसकी तबीयत थी कि चुपचाप पीछेसे आकर आँखें मींच ले; पर, पीठके पास आकर हाथ बढ़ाते ही सामने शीशेमें नजर पड़ गई। देखा कि यज्ञदत्त उसके मुँहकी तरफ देख-देखकर मुसकरा रहा है। सुरमा भी हँस दी; बोली—क्यों देख लिया ?

यज्ञदत्त—यह क्या मेरा कसूर है ?

सुरमा—तो किसका है ?

यज्ञदत्त—आधा तुम्हारा है; और आधा है इस शीशेका।

सुरमा—अभी मैं उसे ढँके देती हूँ।

यज्ञदत्त—ढँक न दो, लेकिन बाकीके लिए क्या करोगी ?

सुरमाने दो-तीन बार हिल-डुलकर कहा—प्रकाश ?

यज्ञदत्त—कहो छाया !

सुरमा—तुम लटते क्यों जाते हो ?

यज्ञदत्त—मुझे तो ऐसा नहीं मालूम होता।

सुरमा—तुम खाते क्यों नहीं ?

यज्ञदत्त हँसने लगा। बोला—सुरो, झगड़ा करने आई हो ?

सुरमा—हूँ !

यज्ञदत्त—मैं इसके लिए राजी नहीं।

सुरमा—तुम ब्याह क्यों नहीं करोगे ?

यज्ञदत्त—इसका जवाब तो रोज एक बार दिया ही करता हूँ।

सुरमा—नहीं, करना ही पड़ेगा ।

यज्ञदत्त—सुरो, तुम अपना ब्याह क्यों नहीं करतीं ?

सुरमाने यज्ञदत्तके हाथसे चिट्ठी छीनकर कहा—छिः, विधवाका कहीं ब्याह होता है ?

यज्ञदत्तने कुछ देर चुप रहकर कहा—कौन जाने ? कोई कहता है, होता है; कोई कहता है, नहीं होता ।

सुरमा—तो फिर मुझे इस निमित्तका भागी बनानेकी कोशिश क्यों ?

यज्ञदत्तने लम्बी साँस लेकर कहा—तो क्या हमेशा मेरी ही सेवा करते करते जीवन बिता दोगी ?

‘ हूँ ’ कहकर वह टप-टप आँसू गिराती हुई रोने लगी ।

यज्ञदत्तने उसके आँसू पोंछते हुए कहा— सुरो, तुम्हारे मनकी साध क्या है, क्या मुझे साफ-साफ नहीं बताओगी ?

सुरमा—मुझे वृन्दावन भेज दो ।

यज्ञदत्त—मुझे छोड़कर रह सकोगी ?

सुरमांकें मुँहसे बात नहीं निकली ।—दायें और बायें दो-एक बार सिर हिलाने-के साथ ही उसकी आँखोंका पानी झरने-सा बहने लगा ।



## २

**सुरमा**—यज्ञ-भइया, वह कहानी फिरसे कहो न ?

**यज्ञ०**—कौन-सी सुरमा ?

सुरमा—वही, मुझे जब वृन्दावनमें खरीदा था । कितने रुपयेमें खरीदा ?

यज्ञदत्त—पचास रुपयेमें । मेरी उमर तब अठारह सालकी थी । बी० ए० का इम्तहान देकर पछाँहकी तरफ घूमने गया था । मा तब जिन्दा थीं, वे भी साथ थीं । एक दिन दोपहरको मालती-कुंजके पाससे वैष्णवियोंका एक दल गीत गाता हुआ जा रहा था, उसीमें पहले-पहल मैंने तुम्हें देखा । यौवनकी पहली सीढ़ीपर पैर रखते ही दुनिया ऐसी सुन्दर-सुहावनी दीखने लगती है कि सिर्फ अपनी ही आँखोंसे उसका माधुर्य पूरा पूरा लूटा नहीं जा सकता । साध

होती है, मनकी-सी और दो आँखें इसी तरह एक साथ ऐसी शोभाका सम्भोग कर सकें,—अगर उसे समझा दे सकूँ,—यह क्या सुरमा, रोती हो ?

सुरमा—नहीं, तुम कहो ।

यज्ञदत्त—तुम तब तेरह वर्षकी नवीन वैष्णवी थीं, हाथमें तंबूरा था, गीत गा रही थीं ।

सुरमा—जाओ, मैं क्या गाना गा सकती हूँ ?

यज्ञदत्त—तब तो गा सकती थीं,—उसके बाद बहुत परिश्रमसे तुम्हें पाया, तुम ब्राह्मणकी लड़की थीं,—बाल-विधवा । मा तुम्हारी तीर्थमें आकर फिर घर न लौट सकीं,—स्वर्ग सिंघार गईं । मैंने तुम्हें लाकर अपनी माके हाथ सोंप दिया, उन्होंने छातीसे लगा लिया,—उसके बाद, मरते समय वे फिर मुझे ही लौटा गईं ।

सुरमा—यज्ञ-भइया, तुम्हारा घर कहाँ है ?

यज्ञदत्त—सुना है, किसननगरके पास है कहीं ।

सुरमा—मेरे और कोई नहीं है ?

यज्ञदत्त—मैं हूँ न, यही तो तुम्हारा सब-कुछ है, सुरमा ।

सुरमाके पलक फिर भीग गये, बोली—तुम मुझे फिर बेच सकते हो ?

यज्ञदत्त—नहीं, सो नहीं कर सकता । अपनेको बिना बेचे यह काम हरगिज़ नहीं हो सकता ।

सुरमा कुछ बोली नहीं, उसी तरह डबडबाई हुई आँखोंसे उसकी तरफ देखती रही । बहुत देर बाद धीरेसे बोली—तुम बड़े भइया हो, मैं छोटी बहन हूँ,—हम दोनोंके बीच एक बहू ले आओ न भइया ।

यज्ञदत्त—क्यों भला ?

सुरमा—दिन-भर उसका साज-सिंघार करके उसे तुम्हारे पास लाकर बैठा दिया करूँगी ।

यज्ञदत्त—सो क्या तुम पूरे मनसे कर सकोगी ?

सुरमाने मुँह उठाकर, उसकी आँखोंमें आँखें बिछाकर, कहा—मैं क्या ऐसी अधम हूँ जो जलूँगी ?

यज्ञदत्त—जलेगी नहीं, पर अपनी जगह तो लुटा दोगी ?

सुरमा—लुटा क्यों दूँगी ? मैं राजाकी राजा ही रहूँगी, सिर्फ एक मंत्री बहाल कर दूँगी, दोनों जनीं मिलकर तुम्हारा राज्य चलावेंगी, बड़ा आनन्द आयेगा ।

यज्ञदत्त—देखो छाया, विवाह करनेकी मुझे इच्छा नहीं; पर हाँ, तुम्हें अगर एक साथीकी बहुत जरूरत हो, तो ब्याह कर सकता हूँ।

सुरमा—हाँ, जरूर करो, बड़ा आनन्द आयेगा; दोनों जनीं खूब मौजसे दिन बितायेंगी।

इतना कहकर सुरमा मन-ही-मन बोली,—तीनों कुलमें मेरे तो कोई है नहीं; मान-अपमान हो, सो भी नहीं; लेकिन, तुम क्यों मेरे कारण दुनिया-भरका कलंक बटोरोगे ? देव हो तुम मेरे ! तुम ब्याह करो, तुम्हारा मुँह देखकर मैं सब सह लूँगी।



### ३

कलकत्तेमें ऐसे बहुतसे लोग हैं जो अपने पड़ोसीकी भी कुछ खबर नहीं रखते, और बहुतसे रखते हैं तो खूब रखते हैं। जो खबर रखते हैं, वे कहते हैं,—यज्ञदत्त बी० ए० पास भले ही कर ले, पर है आवारा लड़का। इशारेमें वे सुरमाकी बातका उल्लेख करते हैं ! कभी कभी यह बात सुरमा और यज्ञदत्तके भी कानोंमें पड़ जाती है। सुनकर दोनों जने हँसने लगते हैं।

परन्तु, तुम अच्छे हो चाहे बुरे, अगर बड़े आदमी हो तो तुम्हारे घर लोग आयेंगे ही,—खासकर औरतें। कोई कहती—सुरमा, तुम अपने भइयाका ब्याह क्यों नहीं करवा देती ?

सुरमा जवाब देती—करा दो न जीजी, अच्छी-सी एक लड़की देखके।

जो सुरमाकी सेहली होती वह हँस देती—यही तो, अच्छी लड़की मिलना मुश्किल है, तुम्हारे रूपसे जिसकी आँखें भरी हुई हैं, उसके—

“हट जलमुँही—” कहते कहते सुरमाका सारा चेहरा स्नेह और गर्वसे लाल हो उठता।

उस दिन दोपहरको टपटप मेह बरस रहा था, सुरमाने कमरेमें घुसते ही कहा—एक लड़की पसन्द कर आई हूँ।

यज्ञदत्त—उफ्, माथेसे एक चिन्ता हट गई। कहाँ, सुनूँ तो सही ?

सुरमा—उस मुहल्लेके भित्तिरोंके यहाँ।

यज्ञदत्त—ब्राह्मण होकर कायस्थके घर ?

सुरमा—क्यों, कायस्थोंके घर क्या बाम्हन नहीं रहते? उसकी माँ वहाँ रसोई बनानेका काम किया करती थी। सुना है, लड़की बहुत अच्छी है। देख आओ, अगर मनमें बैठ जाय तो घर ले आना।

यशदत्त—मैं क्या ऐसा ही अभागा हूँ कि दुनिया-भरकी भिखारिनोंके सिवा मेरी गुजर ही न होगी ?

सुरमा—भिखारिन बटोर लाना तुम्हारे लिए कुछ नया काम थोड़े ही है !

यशदत्त—फिर !—

सुरमा—नहीं, तुम जाओ, देख आओ। मनमें जम जाय तो 'ना' मत करना।

यशदत्त—मनमें तो किसी हालतमें जम ही नहीं सकती।

सुरमा—जम जायगी जी, खूब जमेगी ! एक बार देख तो आओ।

छायादेवीने फिर प्रकाशदेवको ऐसा सजा दिया,—खूब खुशबू वगैरह लगा, कर, माँज-धिसकर, बाल काढ़कर,—इस ढंगसे आईनेके सामने खड़ा कर दिया—कि यशदत्तको शरम मालूम होने लगी। बोला—छिः, यह तो बहुत ज़्यादाती हो गई।

सुरमाने कहा—हो जाने दो, तुम देख आओ।

गाड़ीपर सवार होकर यशदत्त लड़की देखने चल दिया। रास्तेमें एक मित्रको भी अपने साथ ले लिया।—चलो, भित्तिरोंके यहाँ जलपान कर आवें।

मित्रने पूछा—इसके मानी ?

यशदत्त—उनके घर एक भिखारिनकी लड़की है। उसके साथ ब्याह करना होगा।

मित्र—कहते क्या हो, यह सीख किसने दी ?

यशदत्त—तुम लोग जिसकी ईर्ष्यासे मरे जा रहे हो, उसी छाया देवीने।

यशदत्त अपने मित्रके साथ लड़की देखने भित्तिरोंके घर पहुँचे। लड़की कापेटके आसनपर बैठी थी, कई बारकी धुली हुई देशी साड़ी पहने,—उसक सूत कहीं-कहीं ऐसे बिखर गये थे जैसे जाली। हाथोंमें त्रिलौरी चूड़ियाँ थीं और तौबेकेसे रंगके सोनेके हँटे हुए कढ़े,—कहीं कहीं उनके भीतरका चपड़ा दीख रहा था। माथेमें इतना तेल था कि ललाट तक चकचक कर रहा था, और सिरके बीचों-बीच ठीक ब्रह्मतालुके ऊपर काठ-सा कड़ा बँधा हुआ जूड़ा

ऊँचा खड़ा था। दोनों मित्र उसे देखते ही मुसकरा दिये। हँसीको छिपाते हुए लड़कीकी तरफ देखकर यशदत्तने कहा—क्या नाम है तुम्हारा ?

लड़कीने अपनी बड़ी बड़ी काली आँखोंको शान्तभावसे उसके मुँहपर रखते हुए कहा—प्रतुल।

यशदत्तने अपने मित्रको चुटकी भरकर मुसकराते हुए कहा—क्यों भाई, गदाधर \* तो नहीं ?

मित्रने हलका-सा एक धक्का देकर कहा—ज़्यादा बको मत, झटपट पसन्द कर डालो।

“हाँ, अभी लो—”

“अच्छा,—अच्छा, क्या पढ़ती हो ?”

“कुछ नहीं।”

“और भी अच्छा है।”

“काम-काज करना आता है ?”

प्रतुलने सिर हिलाया। पास ही एक नौकरानी खड़ी थी, उसने व्याख्या कर दी—बड़ी कमेरी लड़की है बाबूजी, रसोई बनाना-परोसना, घरके काम-धन्धेमें अपनी माके जैसी है। और मुँहसे तो बात ही नहीं निकलती,—बड़ी सान्त है।

“सो तो देख ही रहा हूँ। तुम्हारे बाप हैं ?”

“नहीं।”

“मा भी मर गई हैं ?”

“हाँ।”

यशदत्तने देखा कि इस गूँगी-बेवकूफ लड़कीकी आँखोंमें आँसू भर आये हैं, पूछा—तुम्हारे क्या कोई भी नहीं है ?

“नहीं।”

“हमारे घर चलेगी ?”

उसने गरदन हिलाई—हाँ। इतनेमें उसकी जंगलेकी तरफ निगाह पड़ी तो देखा कि खिड़कीमेंसे दो काली आँखें जैसे आग बरसा रही हों ! उसने डरकर कहा—नहीं।

---

\* स्व० गिरीशचन्द्र घोषके नाटकका एक पात्र, जो तलाशीके वक्त पुलिसके डरसे स्त्रीकी पोशाक पहनकर अपनेको छिपाना चाहता है।

बाहर आकर मित्तिर साहबसे भेंट हुई ।

“ कैसी देखी लड़की ? ”

“ अच्छी है । ”

“ तो फिर ब्याहका मुहूर्त सुधवाया जाय ? ”

“ हाँ-हाँ । ”



## ४

**बा**रह-तेरह वर्षके लड़केके हाथसे जब कोई निर्दय रसहीन अभिभावक उसका अध-पढ़ा कौतुकपूर्ण उपन्यास छीनकर छिपा देता है, तब उसकी जैसी हालत होती है,—भीतरका प्राण व्याकुल भावसे उस शुष्क-मुख शंकित बालकको कभी इस कोठरीमें और कभी उस कोठरीमें दौड़ाता रहता है, डरती हुई उसकी तीव्र आँखें जैसे उस प्रिय पदार्थको खोजनेके लिए व्यस्त और विरक्त हो जाती हैं, और उसकी सर्वदा इच्छा होती रहती है कि किसीपर खूब गुस्सा होवे,—उसी तरह सुरमा यज्ञदत्तके लिए छटपटाने लगी । वह क्या जाने क्या ढूँढ़ कर निकालेगी । कुरसी, बेञ्च, शोफा, पलंग, कमरा, बरंडा, सभी चीजोंपर वह नाराज़ हो उठी । सड़ककी तरफका एक भी जंगला उसे पसन्द न आया; कभी इसपर और कभी उसपर बैठने लगी । यज्ञदत्तने कमरेमें प्रवेश किया ।

“ क्या हुआ प्रकाश महाशय ? ”

प्रकाशका चेहरा गम्भीर हो गया ।

सुरमा—पसन्द आई ?

यज्ञदत्त—आई ।

सुरमा—कबका ब्याह है ?—

यज्ञदत्त—शायद, इसी महीनेमें,—

निरानन्द उत्साहके साथ सुरमा पास आई, पर उसने किसी तरहका ऊधम नहीं किया, कहा—तुम्हें मेरे सिरकी कसम, सच बताओ ।

“ कैसी आफत है, सच ही तो कह रहा हूँ । ”

“ मेरा मरा मुँह देखो,—बताओ, पसन्द आगई ? ”

“ हाँ—”

सहसा सुरमाको मानो कोई शब्द ढूँढ़े नहीं मिला । बच्चे जैसे फटकार खाकर

रोनेसे पहले इधर-उधर गरदन हिलाकर कोई अर्थहीन बात कह डालते हैं, सुरमाने भी उसी तरह बच्चों जैसी गरदन हिलाकर गाढ़े स्वरमें कहा—मैंने तो पहले ही कह दिया था ।

यशदत्त अपनी ही चिन्तामें व्यस्त था; इसलिए, समझ नहीं सका कि उसके कुछ मानी ही नहीं होते; क्योंकि, पहले तो ‘पसन्द ही होगी’ ऐसी बात सुरमाने कभी कही ही नहीं; दूसरे, उसने खुद भी लड़की नहीं देखी; बल्कि, ऐसी तो उसने बिलकुल आशा ही नहीं की थी कि इतनी जल्दी पसन्द भी आ जायगी और सगाई भी पक्की हो जायगी । इसीसे वह दिन-भर अपने कमरेमें बैठकर इस बातकी चिन्ता करने लगी । दो दिन बाद यशदत्तके बहुत-कुछ समझमें आ गया । बोला—सुरो, यह ब्याह मत कराओ, बहन ।

सुरमा—वाह, ऐसा भी कहीं होता है ? सगाई जो पक्की हो गई है ।

यशदत्त—पक्की कुछ नहीं हुई ।

सुरमा—नहीं, सो नहीं हो सकता, दुखिया लड़कीको सुखी करना है, यह भी तो जरा सोचो; खासकर, वचन देकर मुकरोगे ?

यशदत्तको प्रतुलकुमारीका मुखड़ा याद आ गया, उस दिन उसकी काली काली आँखोंमें मानो उसने सहिष्णुता और शान्तभावकी निगूढ़ छाया देखी थी,—इससे वह चुप हो रहा । फिर भी, बहुत-सी बातें सोचने लगा । सुरमाके बारेमें ही ज़्यादा सोचा । वर्षाके दिन सहसा बरसाती पतिंगे जैसे घर-भरमें भर जाते हैं, उसी तरह उसका सारा मन भी बेचैनीसे भर गया; और, साथ ही, उनका छिपा हुआ वास-गह्वर जैसे ढूँढ़े नहीं मिलता, उसी तरह सुरमाके मुँहकी बातें हृदयकी किस गुप्त आकांक्षाके भीतरसे झुंड बाँधकर निकलने लगीं, इसका भी कुछ पता नहीं लगा । उसकी आँखोंपर ऐसा एक धुँधला-सा जाल पड़ गया कि उसे किसी भी तरह सुरमाका चेहरा न दिखाई दिया ।



५

**ब्याह** करके यशदत्त बहूको घर ले आया । विकार-ग्रस्त रोगीके घरमें कोई आदमी न रहनेसे जैसे वह अपनी सारी शक्तियोंको एक करके पानीके घड़ेकी तरफ दौड़कर उससे चिपट जाता है, सुरमाने ठीक उसी तरह नई बहूको छातीसे चिपटा लिया । अपना जितना भी ज़ेवर था, सब उसे पहना

दिया; और, जितने कपड़े थे, सब उसके बाँक्समें भर दिये। सूखे मुँहसे दिन-भर बहूको सजानेकी धूम देखकर यज्ञदत्तका मुँह इतना-सा निकल आया। गभीर स्वप्न तो सहा जा सकता है,—क्योंकि, असह्य होते ही नींद टूट जाती है; परन्तु, जागते हुए स्वप्न देखनेमें तो दम अटकने लगता है; किसी तरह वह खतम ही नहीं होता,—और नींद भी नहीं टूटती। कभी मालूम होता है यह स्वप्न है, कभी मालूम होता है यह सत्य है। प्रकाश और छाया दोनोंके ही ऐसा भाव आने लगा। एक दिन अपने कमरेमें बुलाकर यज्ञदत्तने कहा—छाया !

“ क्या यज्ञ-भइया ? ”

“ ‘ प्रकाश ’ नहीं कहा ? ”

सिर झुकाकर सुरमाने कहा—प्रकाश ।

यज्ञदत्तने दोनों हाथ बढ़ाकर कहा—बहुत दिनोंसे पास नहीं आई, आओ । सुरमाने एक बार उसके मुँहकी तरफ देखा; और, दूसरे क्षण कह उठी—वाह, मैं भी खूब हूँ ! बहूको अकेली छोड़ आई हूँ ! कहती हुई वह जल्दीसे भाग गई ।

गुस्सेमें अगर किसी अपरिचित भले आदमीके गालमें थप्पड़ मार दिया जाय, और वह अगर शान्त-भावसे क्षमा करके चला जाय, तो उस समय जैसा मन खराब हो जाता है, वैसे ही क्षमाप्राप्त अपराधीकी तरह उसका भी मन क्रमशः उत्साह-हीन होने लगा । बार बार यही मालूम होने लगा,—उसने अपराध किया है और सुरमा उसे जी-जानसे क्षमा कर रही है ।

सुरमा सर्व आभरणोंसे भूषित नववधूको जबरदस्ती उसके पास बिठा देती । शाम होते ही बाहरसे चटसे ताला बंद कर देती । यज्ञदत्त गालपर हाथ रखकर सोचता रहता । बहू भी कुछ-कुछ समझ जाती है; वह सयानी लड़की नहीं है,—फिर भी, है तो नारी; और साधारण स्त्री-बुद्धिसे भगवान् किसीको भी वंचित नहीं रखते । वह भी सारी रात जागती रहती ।

ब्याह हुए आज आठ दिन भी नहीं हुए, इतनेहीमें एक दिन सबेरे यज्ञदत्तने सुरमाको बुलाकर कहा—सुरो, बर्द्धमानमें बुआजीको बहू दिखा लाऊँ ।

\*

\*

\*

\*

दामोदर नदीके उस पार बुआका गाँव है । बुआके घर पहुँचते ही यज्ञदत्तने कहा—बुआजी, बहू लाया हूँ, देखो ।

बुआ—अरे, ब्याह कर लिया ! ओ-हो, जीओ जीओ, हजारी उमर हो ! बड़ी अच्छी चन्दा-सी बहू है, अब आदमीकी तरह घर-गिरस्ती चलाओ, बेटा ।

यज्ञदत्त—इसी लिए तो सुरमाने ज़बरदस्ती ब्याह कराया है ।

बुआ—अच्छा, सुरोने ब्याह करवाया है ?

यज्ञदत्त—उसीने तो कराया है, पर तकदीर ही खराब निकली,—इस बहूके साथ घर नहीं चल सकता ।

बुआ—क्यों, सो क्यों ?

यज्ञदत्त—जानती तो हो बुआ, भेरा नर गण है, और बहूका है राक्षस गण । एक साथ रहनेसे ज्योतिषीने कहा, जीया न जीया ।

बुआ—अरे बेटा, ऐसी बात—

यज्ञदत्त—तब जल्दीमें ये सब बातें देखी नहीं गईं, अब यह तुम्हारे ही पास रहा करेगी, माहवारी पचास रुपये तुम्हें भेज दिया करूँगा, उससे काम नहीं चल जायगा बुआ ?

बुआ—हाँ, सो चल जायगा । गँवई-गाँवमें, विशेष कोई तकलीफ नहीं होगी । अहा, चाँद-सी बहू है, बड़ी हो गई है,—क्यों रे जग्गू, कोई शान्ति-विधान करानेसे नहीं होगा ?

यज्ञदत्त—हो सकता है । मैं भट्टाचार्यजीसे पूछकर, जैसा होगा, तुम्हें खबर दूँगा ।

बुआ—अच्छा, सो ही देना बेटा ।

शामके वक्त बहूको पास बुलाकर यज्ञदत्तने कहा—तो तुम यहीं रहो ।

उसने गरदन हिलाकर कहा—अच्छा ।

“ तुम्हें जब जिस चीज़की जरूरत हो, मुझे खबर देना । ”

“ अच्छा । ”

“ तुम्हें चिट्ठी लिखना आता है ? ”

“ नहीं । ”

“ तो फिर, कैसे खबर दोगी ? ”

नववधू घरकी पालतू हरिणीकी तरह अपनी आँखोंको पतिके चेहरेपर गाड़कर चुपचाप खड़ी रही। यज्ञदत्त मुँह फेरकर चला गया।

बुआजीके घर बहू खूब तड़के ही उठकर काम-काजमें लग जाती है। बैठा रहना उसने सीखा ही नहीं। बिलकुल नई होनेपर भी उसने परिचितकी भाँति घरका काम-धन्धा करना शुरू कर दिया। दो-चार दिनमें ही बुआजी समझ गई कि ऐसी लड़की सभीकी कोखसे नहीं होती।

बहूके पास बहुत गहने हैं; मुहल्ला-भर देखने आता है। किसीन पूछा— किसने दिया है बहू ? तुम्हारे बापने ?

“ मा-बाप मेरे नहीं हैं, ननदजीने दिया है। ”

दो-एक बराबरकी उमरवालियोंसे मेल हो जानपर वे खोद-खोदकर भेद जाननेकी कोशिश करने लगीं। पूछने लगीं—तुम्हारी ननद शायद खूब बड़ी आदमिन हैं ?

“ हाँ। ”

“ सब गहने उन्हींके हैं ? ”

“ सब। ”

“ वे नहीं पहनतीं ? ”

“ विधवा हैं वे, पहनती नहीं। ”

“ कितनी उमर है बहू ? ”

“ हम लोगोंसे कुछ बड़ी होगी ? उन्हींने ज़बरदस्ती अपने भइयासे मेरा न्याह कराया है। ”

“ तुम्हारा वर उनका खूब कहना मानता है, क्यों ? ”

“ हाँ, वे सती-लक्ष्मी हैं, सभी-कोई उनसे प्रेम करते हैं। ”



## ६

ऊपरके जंगलेसे सुरमाने देखा, यज्ञदत्त घर लौट आये, पर साथमें बहू नहीं है। घरमें घुसते ही उसने पूछा—भइया, बहूको कहाँ छोड़ आये ?

“ बुआजीके घर। ”

“ साथमें ले क्यों नहीं आये ? ”

“ रहने दो अभी, कुछ दिन बाद देखा जायगा। ”

बात सुरमाकी छातीमें चुभ गई। दोनों चुप बने रहे। प्रिय जनोंमें बहस करते करते अचानक झगड़ा हो जानेसे जैसे दोनों कुछ देरतक क्षुण्ण मनसे चुपचाप बैठे रहते हैं,—ये दोनों जने भी कुछ दिन उसी तरह चुपचाप दिन बिताते रहे। सुरमा कहती,—नहा-धोकर खा-पी लो, बहुत अबर हो गई है। यज्ञदत्त कहता,—हाँ, जाता हूँ।

ऐसे भी कुछ दिन बीत गये।

एक साथ रहकर घर-गिरस्ती चलानेका काम हमेशा इस तरह नहीं हो सकता, इसीसे फिर मेल होने लगा। यज्ञदत्त फिर लाड़-प्यारके साथ बुलाने लगे—ओ छाया! मगर, छाया अब ‘प्रकाश’ नहीं कहती। कभी ‘यज्ञ-भइया’ कहती है, कभी सिर्फ ‘भइया’ कहकर ही पुकारती है।

एक दिन सुरमाने कहा—भइया, करीब तीन महीने होने आये, अब बहूको ले आओ।

यज्ञदत्त बात टाल देता—हाँ, सो आ जायगी। सुरमा उसके मनका भाव समझकर चुप रह जाती।

बुआकी चिठी कभी कभी आ जाया करती है। बुआ लिखती हैं, बहूको मलरिया-बुखार आने लगा है; इलाज होना ज़रूरी है। मतलब समझकर यज्ञदत्त और कुछ रुपये ज़्यादा भेज देता। फिर, महीने-भर कोई बात ही नहीं छिड़ती।

इतनेमें ही एक दिन अकस्मात् चिठी आई—बुआ मर गई!

यज्ञदत्त वर्द्धमान चला गया। जाते समय सुरमाने सिरकी कसम देकर कह दिया,—बहूको लेते आना।

वर्द्धमानमें, बुआकी तेरहीं हो जानेके बाद, एक दिन दोपहरको यज्ञदत्त बरंडेमें खड़ा खड़ा घर आनेकी बात सोच रहा था। आँगनमें धानके भिसौराके पास नई बहू खड़ी थी; उसपर उसकी निगाह पड़ गई। चार आँखें होते ही उसने हाथसे इशारा करके उसे पास बुलाया।

बहू पास आ गई।

“क्यों?”

“आपसे कुछ कहूँगी।”

“अच्छी बात है, कहो।”

नई बहूने घूँट-सा भरते हुए कहा—एक दिन आपने कहा था, अगर मुझे कुछ जरूरत हो—

यशदत्त—हाँ हाँ, क्या ज़रूरत है बताओ—

बहू—घरमें सभी-कोई कहा-सुनी करती रहती हैं, मैं बड़ी कुलच्छिनी हूँ, इसीसे यहाँ अब रहनेको जी नहीं करता ।

यशदत्त—कहाँ रहना चाहती हो ?

बहू—कलकत्तेमें अगर कहीं भले-घरमें जगह मिल जाती,—मैं तो सब काम कर जानती हूँ ।

यशदत्त—तुम अपने घर जाओगी ?

बहू—मेरा अपना घर ? कहाँ है सो ? वे क्या अब रहने देंगे ?

यशदत्तने अपने हाथसे स्त्रीका मुँह ऊँचा करके कहा—मेरे घर चलोगी ?

बहू—चलूँगी ।

यशदत्त—सुरमा तुम्हारे लिए बड़ी घबरा रही है ।

सुरमाके जिक्रसे उसका चेहरा मोर खुशीके फूल उठा,—जीजी मेरी याद करती हैं ?

यशदत्त—खूब करती हैं ।

बहू—तो ले चलिए ।

दुनियामें ऐसे भी एक तरहके आदमी हैं, जिन्हें दूसरोंके बारेमें अपनी राय जाहिर करनेकी बुद्धि ही किसी तरह ढूँढ़े नहीं मिलती; किन्तु, साथ ही उनमें ऐसी एक सहज बुद्धि होती है कि वे उसपर निर्भर होकर अपने बारेमें और किसीसे सलाह लेनेकी कतई ज़रूरत नहीं समझते । नई बहू इसी कोटिकी है । वह अपनी बात आप ही सोचती है,—दूसरेसे नहीं पूछती । उसने सांचकर कहा—आप लोगोंका अमंगल होनेका बड़ा डर है मुझे, पर रहूँ भी तो कहाँ रहूँ ? नहीं तो, मैं नीचे ही रहा करूँगी, सब काम-काज करनेमें नीचे ही आराम रहेगा ।

यश—ऊपर क्या तुम्हारे रहनेका कमरा नहीं है ?

“ है, पर नीचेके कमरेमें ही अच्छी रहूँगी । ”

यशदत्तने फिर कोई बात नहीं की । वह सोचने लगा, इसकी बातें तो बिल्कुल बेवकूफोंकी-सी नहीं हैं, और कई बार मनमें आई कि कह दे,—वह कुलच्छिनी नहीं है, राक्षस गण वगैरह सब झूठी बात है । पर झूठ बोलनेका कारण क्या, सो कैसे बताया जाय । खासकर वह इस बातका भरोसा भी नहीं कर सका

कि घर जाकर वह अपने पिछले और आगेके व्यवहारमें अच्छी तरह सामंजस्य भी रख सकेगी ।



७

सुरमाने देखा, कि बहू आ गई । उग्र नशेका पहला झोंका सँभाल करके अब वह स्थिर हो गई है । इसीसे बहूको देखनेके लिए उसने ज़्यादाती नहीं की । शान्त धीरे भावसे प्रिय-सम्भाषण किया; मौखिक ही नहीं,—अन्तरंगकी मंगलेच्छा उसके सूखे चेहरेपर फिरसे ज्योति ले आई । बोली—बहू, तबीयत तो तुम्हारी वहाँ ठीक नहीं रही ?

बहूने सिर हिलालर कहा—बीच-बीचमें बुखार आ जाता था ।

सुरमाने उसके माथेका पसीना पोंछकर कहा—यहाँ इलाज होते ही सब अच्छा हो जायगा ।

दोपहरको सुरमाका खबर लगी कि बहूके लिए नीचेका कमरा साफ हो रहा है; मार अपमानक उसकी आँखोंमें आँसू भर आये । किसी तरह उन्हें रोकते हुए वह यज्ञदत्तक पास जाकर बोली—भइया, बहू क्या नीचे सोयेगी ?

यज्ञदत्तने पुस्तकपरसे बिना आँख उठाये ही कहा—वह तो यही कहती है ।

“तुम कुछ नहीं कहेगि ?”

“मैं क्या कहूँ ? जिसके मनमें जो आवे, करे ।”

सुरमा लज्जा और धिक्कारसे अपनेको काबूमें न रख सकी, उसके सामने ही रां दी और भाग खड़ी हुई ।

ऊपरकी यह वारदात नीचे तक न पहुँची ।

नई बहू नये सिरसे घरके काम-काजमें जुट पड़ी । क्रमशः धीरे-धीरे उसने सुरमाका सब काम अपने हाथमें ले लिया । सिर्फ ऊपर नहीं जाती,—पतिके साथ मुलाकात नहीं करती । धीरे धीरे सुरमाने भी ऊपरका जाना-आना छोड़ दिया । बहू प्रफुल्ल-गम्भीर मुखसे काम करती, और सुरमा पास बैठी रहती । एक यह दिखाती कि काम करनेमें कितना सुख है, और दूसरी यह समझती कि कामकी बहती धारामें कितना दुःख बहाया जा सकता है । दोनोंमेंसे कोई भी ज़्यादा बातचीत नहीं करती; फिर भी, उनमें परस्पर सहानुभूति क्रमशः गाढ़ी ही होती गई ।

बीच-बीचमें नई बहूको अकसर बुखार आता, और दो-चार दिन उपास करनेसे आप ही चला जाता। दवा खानेकी ओर उसकी प्रवृत्ति भी नहीं है, और न खाती है। उस समयका काम-धन्धा नौकर-नौकरानियाँ ही करती हैं, सुरमासे होता नहीं, इच्छा होनेपर भी सामर्थ्यसे बाहरकी बात है।

सोनेकी प्रतिमा सुरमा देवीका अब न तो वह रंग है और न वह कान्ति; इतना लावण्य इन दो ही महीनोंमें न जाने कहाँ उड़ गया ! बहू कभी-कभी कहती है—जीजी, तुम दिन-पर-दिन ऐसी क्यों होती जाती हो ?

“ मैं ? अच्छा भाभी, तन्दुस्ती सुधारनेके लिए अगर कहीं बाहर चली जाऊँ, तो तुम्हें तकलीफ तो न होगी ? ”

“ जरूर, होगी क्यों नहीं ? ”

“ तो नहीं जाऊँगी । ”

“ नहीं जीजी, मत जाना, तुम दवां-दारू कराके यहीं अच्छी हो जाओ । ”

सुरमाने मारे स्नेहके उसका ललाट चूम लिया ।

एक दिन सुरमा यज्ञदत्तके लिए थाली लगा रही थी। यज्ञदत्त उसका मलिन सूखा चेहरा सतृण दृष्टिसे देख रहा था। सुरमाके आँख उठाकर देखते ही उसने दीर्घ निःश्वास लेते हुए कहा—मनमें आता है मर जाऊँ तो अच्छा ।

“ क्यों ? ” कहते ही सुरमाकी आँखोंमें आँसू भर आये ।

“ डरता हूँ, न-जाने और कबतक प्राणोंका भार ढोना पड़ेगा । ”

बन्दूककी गोली खाकर वनका पशु जैसे जमीन छोड़कर आसमानमें भागनेके लिए जी-जानसे उछल पड़ता है; किन्तु, आसमान उसका कोई नहीं, इसलिए वह आश्रयशून्य मरणाहत जीव अन्तमें चिर-आश्रय पृथिवीको ही हृदयसे लगाकर प्राण त्याग देता है, उसी तरह छटपटाती हुई सुरमाने पहले तो आकाशकी ओर देखा, उसके बाद ठीक उसी तरह जमीनपर लोटकर वह रोने लगी—यज्ञ-भइया, क्षमा करो, मैं तुम्हारी शत्रु हूँ, मुझे और कहीं भेज दो, तुम सुखी होओ ।

कहीं नौकरानी न आ जाय, इस डरसे यज्ञदत्तने हाथ पकड़कर उसे उठा लिया । स्नेहसे उसके आँसू पोंछते हुए कहा—छिः, लड़कपन नहीं करते ।

आँसू पोंछती हुई सुरमा झटपट कमरेमें चली गई और भीतरसे दरवाजा बन्द कर लिया ।





उसके बाद, एक दिन सुरमाने बहूका अपने पास खींचकर धीरेसे पूछा—  
बहू, भइयाने क्या तुमसे कभी कुछ कहा है ?

बहूने सहज भावसे जवाब दिया—कहेंगे क्या ?

“ तो फिर, तुम उनके पास जाती क्यों नहीं ? तुम्हारी क्या तबीयत नहीं होती जानेकी ? ”

बहूको पहले तो शरम मालूम होन लगी; फिर, सिर झुकाकर बोली—हांती तो है जीजी, लेकिन जाना तो नहीं हो सकता न !

“ क्यों बहू ? ”

“ तुम्हें याद नहीं ? ”

“ नहीं तो ! ”

“ अरे, शायद तुम भूल गई हो जीजी, मेरा जो राक्षस गण है और उनका नर गण है ।

“ किसने कहा ? ”

“ उन्हींने बुआजीसे कहा था, इसीसे तो—”

सुरमाके एकाएक रोंगटे खड़े हो गये, बोली—यह तो झूठी बात है बहू ।

“ झूठी बात ? ”

आँखें फाड़कर वह सुरमाके मुँहकी ओर देखती रह गई । सुरमाके बारबार रोंगटे खड़े होने लगे । बोली—झूठी बात है बहू, बिलकुल झूठ !

“ मुझे विश्वास नहीं होता, वे झूठ बोलेंगे । ”

सुरमासे अब नहीं सहा गया । वह दोनों बाहुओंसे उसका हृद आलिंगन करके फूट-फूटकर रोने लगी—बहू, मैं महापातकी हूँ ।

बहूने अपनेको छुड़ाकर धीरेसे कहा—क्यों जीजी ?

“ उफ्, उसे अब मत सुनो । मैं नहीं कह सकूंगी । ”

×

×

×

×

आँधीकी तरह सुरमा यशदत्तके सामने आ पहुँची । बोली—बहूका इस तरह धोखेमें रख छोड़ा है ? उफ्, कैसे भयानक झूठे हो तुम !

यशदत्त दंग रह गया ।

“ यह क्या सुरो ! ”

“ कृतविद्य हो तुम, छि-छि, तुम्हें शरम आनी चाहिए थी । ”

यज्ञदत्त कुछ मानी नहीं समझा, सिर्फ कड़ई बातें सुनने लगा—

“ क्या सोचकर ब्याह किया था ?—क्या सोचकर उसे छोड़े हुए हो ?—  
मेरे लिए ? मेरा मुँह देखकर इस तरह धोखा देते आ रहे हो ? ”

“ सुरमा, पागल हो गई हो क्या ? ”

“ पागल मैं हूँ ? तुमसे मुझमें ज़्यादा ज्ञान है,—तो मुझे और कहीं भेज दो ! ” कहते हुए सुरमाकी आँखें सुर्ख हो गई, हाँफती हुई बोली—एक छिन भी नहीं रहना चाहती मैं, छि: छि: ।—

यज्ञदत्तने बड़े जोरसे चिल्लाकर कहा—क्या कहती हो ?

“ कहती हूँ, तुम झूठे हो, धोखेबाज हो ! ”

निमेषमात्रमें यज्ञदत्तके माथेके अन्दर आग-सी जल उठी; बिना कारण ही उसे मालूम हुआ, उसके भीतरकी आत्मा बाहर निकलकर उसे युद्ध करनेके लिए ललकार रही है ! ज्ञान-शून्य होकर वह टेबिलपर रखा हुआ भारी ‘ रूलर ’ उटाकर जोरसे चिल्लाता हुआ बोला—मैं अधम हूँ,—मैं धोखेबाज हूँ, झूठा हूँ !—और यह उसका प्रायश्चित्त करता हूँ !

कहते हुए यज्ञदत्तने पूरी ताकतसे उस अपनं सिरपर मार लिया । सिर फटकर झरझर खून बहने लगा । सुरमाने अस्फुट स्वरसे पुकारा—“ मैया री ! ” उसके बाद वह बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़ी । यज्ञदत्तने उसे देखा, देखा कि स्वयं उसका तमाम मुँह खूनसे लथपथ हो गया है, आँखोंमें खून चला जानेसे सब धुँधला-सा दिखाई देता है, वह उन्मत्तकी तरह कहने लगा—अब क्यों ? इतनेमें पीछेसे किसीने आकर पकड़ लिया । मुँड़कर देखा, स्त्री है; रोता हुआ बोला—तुम आ गई ?

कंधेपर सिर रखकर वह भी बेहोश हो गया ।

सुरमा जिस तरह नीचेसे ऊपर भाग आई थी, नई बहू उससे आश्चर्यान्वित और शंकित हाँकर चुपकेसे उसके पीछे पीछे आकर दरवाजेके पास बाहर खड़ी हो गई थी; उसने सब बातें सुनीं और सब देख लिया । बहुत-सा सत्य उसके माथेके भीतर सूर्यके प्रकाशकी तरह स्पष्ट हो गया, उसकी भी छातीकी धड़कन

तेज हां गई, आँखोंके बाहर कुहरा-सा छाया जा रहा था; किन्तु, उसने अपनेको सम्हालकर इस विपत्तिके समय पतिको गोदमें ले लिया।



९

छै दिन बाद अच्छी तरह हांश आनेपर, सुरमाने पूछा, “भइयाकी तबीयत कैसी है?” दासीने जवाब दिया, “अच्छी है।”

“मैं देख आऊँ।” कहती हुई सुरमा उठी, पर फिर पड़ रही। दासीने कहा—तुम बहुत कमजोर हां अभी, और बुखार भी आ रहा है, उठो मत, डाक्टरने मना किया है।

सुरमाने आशा की कि यज्ञ-भइया देखने आयेंगे, बहू आयेगी। एक दिन, दो दिन, करते करते एक सप्ताह बीत गया; तो भी कोई नहीं आया,—किसीने खबर तक नहीं ली।

बुखार अब नहीं आता, पर बहुत कमजोरी है। अब उठनेकी कोशिश करनेसे शायद उठ सकती; परन्तु, जबरदस्त अभिमानके कारण उठनेकी प्रवृत्ति ही नहीं हुई उसमें। वह अपने मन-ही-मन उफन-उफनकर रोने लगी, और आँखें पोंछकर सांचती, अपनी प्रकाश और छायाकी कहानी।

दीप्त प्रकाश और गाढ़ी छाया लेकर उन लोगोंने खेल शुरू किया था, अब प्रकाश बुझता-सा जा रहा है। मध्याह्नका सूर्य पश्चिमकी ओर झुक गया है, गाढ़ी छाया इसीसे अस्पष्ट और विस्तृत होकर प्रेतके समान कंकालसार हो गई है। वह छाया अज्ञात अन्धकारकी ओर मानो उसमें बिला जानेके लिए धीरे धीरे खिसकती जा रही है। रोंते-रोते सुरमा सो गई।

देहपर गरम हाथ रखकर किसीने मानों बुलाया—जीजी।

सुरमा उठकर बैठ गई, बोली—यह क्या बहू?

आँखें उसकी लाल सुर्ख हो रही थीं, मुँह सूखा और ओठोंपर स्याही-सी पुत रही थी। सुरमाने फिर पूछा—क्यों बहू, क्या हुआ है तुम्हें?

“क्या हुआ है मुझे? तुम मुझे इस घरमें लाई थीं, इसीसे कहने आई हूँ तुमसे, जीजी, मुझे छुट्टी दे दो। मैं जाऊँगी—”

“क्यों बहन, कहाँ जाओगी?”

नई बहू सुरमाके पैरोंपर सिर रखकर जमीनपर लोट गई ।

सुरमाने देखा कि उसकी देह आग-सी जल रही है । बोली—यह क्या ! तुम्हें तो खूब बुखार चढ़ा हुआ है । इतनेमें एक नौकरानी चिल्लाती हुई दौड़ी आई, बोली—जीजी, बहू कहाँ गई ? अरी मैया, बुखारकी बेहोशीमें ही भाग आई हैं । आज आठ दिन हुए, बेहोश पड़ी हुई हैं । मैया ! कैसे आई यहाँ ?

“ आठ दिनसे बुखार है ! डाक्टर देख रहे हैं ? ”

“ कोई नहीं जीजी, कोई नहीं देखता, परसों सवेरे भी बहूजी घंटे-भर तक नलके नीचे सिर किये बैठी रही थीं; इतना मना किया, पर एक न सुनी । ”

\* \* \* \*

शाम होनेसे पहले सुरमा यज्ञदत्तके कमरेमें जाकर रो दी—भइया, बहूका तो अब जीना मुश्किल है ।

“ जीना मुश्किल है ! क्या हुआ ? ”

“ मेरे कमरेमें चलकर देखो भइया, बहूका तो अब बचना मुश्किल है । ”

दो-तीन डाक्टरोंने आकर कहा—जोरकी बाय आ गई है । रात-भर विफल परिश्रम करके भोर होते ही वे चले गये ।

रात-भर यज्ञदत्त सिरहाने बैठा रहा, कितनी ही बार मुँहके पास मुँह ले गया, पर बहू पतिको नहीं पहचान सकी ।

डाक्टरोंके चले जानेपर यज्ञदत्त रो उठा—बहू, एक बार आँख खोलकर देखो, एक बार कह दो, क्षमा कर दिया ।

सुरमा पाँवके पास कपड़ेमें मुँह छिपाकर अस्फुट स्वरमें बोली—भाभी, क्यों ऐसी सजा दे चली ?

कौन बात करता ? सम्पूर्ण मान, अभिमान, अवज्ञा और अनादरको दूर हटाकर धीरे धीरे वह अनन्तमें विलीन हो गई ।

\* \* \* \*

सुरमाने कहा—भइया कहाँ हैं ?

दासीने उत्तर दिया—कल वे पछाँहकी तरफ कहीं चले गये हैं ।

“ कब आयेंगे ? ”

“ मालूम नहीं, शायद जल्दी नहीं आनेके । ”

“ मैं कहाँ रहूँगी ? ”

“ मुनीमजीसे कह गये हैं, जितने चाहो रुपये लेकर तुम्हारी जहाँ खुशी हो, वहाँ रहना । ”

सुरमाने आकाशकी ओर देखा,—देखा, संसारका प्रकाश बुझ गया है, सूर्य नहीं है, चन्द्र नहीं है, एक तारा भी नहीं दिखाई देता । अगल-बगल देखा,—वह अस्पष्ट छाया भी न-जाने कहाँ गायब हो गई है,—चारों तरफ घोर अन्धकार है । छातीकी धड़कन भी मानो उसकी बन्द होना चाहती है, आँखोंकी ज्योति भी म्लान और स्थिर होना चाहती है ।

दासीने बुलाया—जीजी !

ऊपरको देखते हुए सुरमाने पुकारा—यज्ञ भइया ! उसके बाद वह धीरे धीरे लुढ़क पड़ी ।

समाप्त

# विलासी\*

एक दो कोस रास्ता पैदल चलकर स्कूल जाया करता हूँ, विद्यार्जन करने । मैं अकेला ही नहीं हूँ,—और भी दस-बारह लड़के हैं । जिनके घर-गाँवोंमें हैं उनके लड़कोंको अस्सी फी-सदी इसी तरह विद्या-लाभ करना पड़ता है । इसमें लाभके अंकोंमें अन्त तक बिल्कुल शून्य न पड़नेपर भी जो पड़ता है, उसका हिसाब लगानेके लिए इन बातोंपर विचार कर लेना काफी होगा—

जिन लड़कोंको सबेरे आठ बजेके भीतर खा-पीकर, घरसे निकलके, दो कोस जाना और दो कोस आना,—चार कोस रास्ता तै करना पड़ता है,—चार कोसके मानी आठ मील ही नहीं, उससे भी बहुत ज़्यादा,—वर्षाके दिनोंमें सिरपर बादलोंका पानी और पैरोंके नीचे घुटनों कीचड़ तथा गरमियोंमें पानीके बदले कड़ी धूप और कीचड़के बदले धूलके समुद्रमें तैरते हुए स्कूल और घर आना-जाना पड़ता है,—उन अभागे बालकोंपर माता-सरस्वती खुश होकर वर दें या उनके कष्ट देखकर कहीं अपना मुँह छिपा लें,—यह खुद भी नहीं सोच सकती ।

इसके बाद यह कृतविद्य शिशु-दल बड़ा होकर किसी दिन गाँवमें ही बसे या भूखकी आग बुझाने और कहीं जाय,—उनकी चार-कोस-पैदल-चली विद्याका तेज आत्मप्रकाश किये बिना न रहेगा, करेगा ही । सुना है, कोई-कोई कहते हैं, अच्छा, जिनके भूखकी आग है, उनकी बात छोड़ ही दी जाय, मगर जिनके वह आग नहीं है, वे सब भले आदमी किस सुखके लिए गाँव छोड़कर भागते हैं ? उनके वहीं बने रहनेसे तो गाँवोंकी ऐसी दुर्दशा न होती !

---

\* एक ग्राम्य बालककी डायरीमेंसे नकल । उसका असल नाम जाननेकी जरूरत नहीं; और बताना भी मना है । चालू नाम एक चाहिए, सो समझ लीजिए—नैदा ( मुण्डित केश ) ।

मलेरियाकी बात नहीं छेड़ता। उसे रहने दो। मगर, इस चार कोस पैदल चलनेकी आफतके मारे कितने भद्र परिवार बाल-बच्चोंको लेकर गाँव छोड़के शहरको भाग जाते हैं, इसकी भी कोई गिनती है! उसके बाद, एक दिन लड़कोंका पढ़ना-लिखना तो खतम हो जाता है; पर तब, फिर शहरके आराम और सहूलियतोंकी रुचि लेकर उनका गाँवमें वापस आना नहीं हो सकता।

मगर, रहने दो इन फालतू बातोंको। मैं स्कूल जाता हूँ,—दो कोसके बीचमें ऐसे और भी तो दो-तीन गाँव पार होने पड़ते हैं। किसके बागमें आम पकने शुरू हो गये हैं, किस जंगलमें करोंदे काफी लगे हैं, किसके पेड़पर कटहल पकनेको हैं, किसके अमृतवान केलेकी गहर कटने-ही-वाली है, किसके घरके सामने-वाली झाड़ीमें अनन्नासका रंग बदल रहा है, किसके तालाबके किनारेवाले खजूरके पेड़से खजूर तोड़कर खानेसे पकड़े जानेकी उम्मीद कम है,—इन सब बातोंकी खबर लगानेमें ही उनका समय चला जाता है; परन्तु, असल जो विद्या है,—कमस्कट्काकी राजधानीका नाम क्या है और साइबीरियाकी खानमें चाँदी मिलती है या सोना,—इन सब जरूरी विषयोंको जाननेकी उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती!

यही वजह है कि इम्तिहानके वक्त, ‘एडन क्या है’ पूछनेपर जवाब देता ‘पर्शियाका बन्दर; और हुमायूँके बापका नाम पूछनेपर लिख आता, ‘तुगलग खाँ’।—और आज चालीसका कोठा पार हो जानेपर भी देखता हूँ कि उन सब विषयोंकी धारणा प्रायः वैसी ही बनी हुई है।—उसके बाद, दरजा चढ़नेके दिन मुँह फुलाकर घर लौट आता। कभी दल बाँधकर माष्टरको ठीक करनेकी सोचता, और कभी तै करता कि ऐसे बाहियात स्कूलको छोड़ देना ही ठीक है।

हमारे गाँवके एक लड़केसे बीच-बीचमें स्कूलके रास्तेमें भेंट हुआ करती। उसका नाम था मृत्युंजय। हम लोगोंसे वह उमरमें बहुत बड़ा था। थर्ड क्लासमें पढ़ता था। कब वह पहले-पहल थर्ड क्लासमें चढ़ा था, इसकी खबर हममेंसे किसीको भी नहीं थी,—सम्भवतः यह पुरातत्त्वविदोंकी गवेषणाका विषय होगा; मगर, हम लोग उसे हमेशासे थर्ड क्लासमें ही देखते आये हैं।—उसके फोर्थ क्लासमें पढ़नेका इतिहास भी कभी नहीं सुना, और सेकेण्ड क्लाससे चढ़नेकी खबर भी कभी नहीं मिली। मृत्युंजयके बाप-मा भाई-बहन कोई भी न था; य

सिर्फ गाँवके एक छोरपर एक बड़ा भारी आम-कठहरका बाग और उसमें एक खंडहर-सा घर,—और थे एक दूरके रिस्तेके चाचा। चाचाका बस एक ही काम था,—भतीजेकी तरह-तरहकी बदनामी उड़ाना। वह गाँजा पीता है, चरस पीता है, और भी न जाने क्या क्या करता है। उनका और एक काम था,—यह कहते फिरना कि उस बागका आधा हिस्सा उनका अपना है, नालिश करके दखल करने-भरकी देर है। हाँ, दखल उन्हें एक दिन भिला जरूर था; पर, वह जिलेकी अदालतमें नालिश करके नहीं,—ऊपरकी अदालतके हुक्मसे; लेकिन वह बात पीछे होगी।

मृत्युंजय खुद अपने हाथसे बनाकर खाता है; और, आमकी फसल आनेपर उस बागको किसीके हाथ उठा देनेसे साल-भरका उसके खाने-पहरनेका खर्च चल जाता है,—और अच्छी तरह चल जाता है। जिस दिन उससे भेंट होती, उसी दिन देखता कि वह फटी-पुरानी-मैली किताबें बगलमें लिये रास्तेके एक किनारेसे चुपचाप चला जा रहा है। उसे कभी किसीके साथ अपनी तरफसे बातचीत करते नहीं देखा,—बल्कि, हम ही लोग उपयाचक होकर उसके पास जाकर बातचीत करते हैं। इसका प्रधान कारण यह था कि दूकानसे मिठाई आदि खरीदकर खिलाने-वाला गाँव-भरमें उसकी जोड़का, दूसरा न था। और सिर्फ लड़के ही नहीं,—बल्कि, कितने ही लड़कोंके बाप भी कितनी ही बार गुस्तरूपसे अपने लड़कोंको भेजकर उससे 'स्कूलकी फीस खो गई है' 'किताब चोरी चली गई है' आदि कहलाकर रुपया वसूल कर लिया करते; परन्तु, इसके लिए कृतज्ञ होना तो दूर रहा, भद्र-समाजमें कोई इतना भी कबूल नहीं करना चाहता कि उनके लड़केने उससे बात भी की है;—गाँवमें मृत्युंजयका ऐसा ही सुनाम था।

बहुत दिन तक मृत्युंजयसे मुलाकात नहीं हुई। एक दिन सुना कि वह मराऊ धरा है। और फिर, एक दिन सुना कि मालपाड़ेके एक बूढ़े माल\*ने उसका इलाज करके, और उसकी लड़की बिलासीने सेवा करके, मृत्युंजयको यमराजके मुँहसे बचा लिया है।

बहुत दिनोंतक मैंने उसकी बहुत-सी मिठाईका सदुपयोग किया है,—मेरा मन उसके लिए न जाने कैसा होने लगा। एक दिन शामके अँधेरेमें छिपे छिपे

\* बंगालकी एक जाति, जो साँप-काटेका इलाज रती है। ओझा भी कहा जा सकता है।

मैं उसे देखने चला गया । उसके टूटे-फूटे घरमें दीवारोंकी बला नहीं है । स्वच्छन्दता-पूर्वक भीतर जाकर देखा कि दरवाजा खुला है, खूब उजला एक दिया जल रहा है, और ठीक सामने ही तख्तपोशपर दूधसे साफ-सुथरे बिस्तरपर मृत्युंजय लेटा हुआ है । उसके कंकालसार शरीरकी ओर देखते ही मालूम हुआ कि वास्तवमें यमराजने अपनी कोशिशमें कोई कसर नहीं रखी थी; पर, आखिर वह सफल न हो सका और यह सब सिर्फ उस लड़कीके ज़ारसे हुआ । वह सिरहाने बैठी हुई पंखांस हवा कर रही थी । अकस्मात्, आदमी आते देख, चौंककर उठ खड़ी हुई । यह उसी बूढ़े सेंपेरेकी लड़की थी,—बिलासी । उसकी उमर अठारहकी थी या अट्ठाईसकी,—कूत नहीं सका । परन्तु, चेहरेकी तरफ देखते ही मालूम हो गया कि उमर चाहे जितनी भी हो, मेहनतके मोरे और रातों जगत जगत उसके शरीरमें अब कुछ रहा नहीं है । ठीक जैसे फूल-दानीमें पानी दे-देकर जिलाये रखा हुआ बासी फूल हो । हाथसे जरा-सा छूते ही, जरा-सा हिलते ही झर पड़ेगा ।

मृत्युंजयने मुझे पहचान लिया, बोला—कौन, नैड़ा ?

मैंने कहा—हाँ ।

मृत्युंजयने कहा—बैठा ।

बिलासी गरदन झुकाये खड़ी रही । मृत्युंजयने दो-चार बातोंमें जा-कुछ कहा, उसका सार यह था कि लगभग डेढ़ महीना होने आया, वह खाटपर पड़ा है । बीचमें दस-पन्द्रह दिन बेहोशीकी हालतमें पड़ा था,—अभी कुछ ही दिन हुए, वह आदमी पहचानने लगा है; और, यद्यपि अभी तक वह बिस्तर छोड़कर उठ नहीं सकता, तो भी, अब किसी बातका डर नहीं है ।

डरकी कोई बात न सही; पर, कम-उम्र लड़का होनेपर भी मैं इतना समझ गया कि आज भी जिसमें बिस्तर छोड़कर उठनेकी ताकत नहीं, उस रोगीको इस जंगलमें अकेली रहकर इस लड़कीने जिला लेनेका जो भार लिया है, वह कितना बड़ा गुरु भार है ! दिनपर दिन, रातपर रात,—उसकी कितनी सेवा, कितनी शुश्रूषा, कितना धैर्य, कितना रतजगा,—कोई ठीक है ! यह कितने बड़े साहसका काम है !

परन्तु, जिस चीजने इस असाध्य-साधनको सम्भव कर डाला था उसका परिचय यद्यपि उस दिन नहीं मिला,—किन्तु, और एक दिन मिल गया ।

लौटते समय वह लड़की एक और दीआ लेकर मेरे आगे आगे दूटी दीवार के आखिरतक आई। अबतक उसने एक बात भी नहीं कही थी; अब वह धीरेसे बोली—सड़क तक तुम्हें पहुँचा आऊँ क्या ?

बड़े बड़े आमके पेड़ोंसे सारा बाग मानो एक जमा हुआ अन्धकार-सा मालूम हो रहा था, रास्ता दीखना तो दर-किनार, अपना हाथ तक न दीखता था। मैंने कहा—पहुँचानेकी ज़रूरत नहीं, सिर्फ दीआ मुझे दे दो।

दीआ मेरे हाथमें देते ही उसके उत्कंठित चेहरेपर मेरी निगाह पड़ गई। आहिस्तेसे वह बोली—अकेले जानेमें डर तो न मालूम होगा ? जरा आगे तक न पहुँचा आऊँ ?

एक स्त्री पूछ रही है, डर तो नहीं मालूम होगा !—लिहाजा, मालूम चाहे कुछ भी हो, उत्तरमें ' नहीं ' कहकर ही मैं आगे बढ़ गया।

उसने फिर कहा,—वन-जंगलका रास्ता है, जरा देख-भालकर पैर रखते हुए जाना।

मेरे रोंगटे खड़े हो गये; परन्तु, इतनी देर बाद समझा कि उद्वेग उसे किस लिए था, और क्यों वह दीआ दिखाकर उस जंगलके रास्तेको पार करा देना चाहती थी। सम्भव है, वह मेरी मनाई नहीं सुनती और साथ ही आती; परन्तु, बीमार मृत्युंजयको अकेला छोड़ जानेके लिए ही शायद अन्त तक उसका मन तैयार नहीं हुआ।

बीस-पचीस बीघेका बाग था; लिहाजा रास्ता कम लम्बा न था। उस डरावने घोर अन्धकारमें हर कदम डरते डरते रखना पड़ता था; किन्तु, दूसरे ही क्षण उस लड़कीकी बातसे सारा मन इस तरह आच्छन्न हो गया कि डरनेके लिए फिर समय ही नहीं मिला। बराबर यही खयाल आने लगा,—किसी मृतप्राय रोगीको लेकर रहना यहाँ कितना कठिन है ! मृत्युंजय तो किसी भी क्षणमें मर सकता था, तब सारी रात इस जंगलमें यह लड़की अकेली क्या करती ? कैसे यह अपनी उस रातको काटती ?

इसी सिलसिलेमें बहुत दिन बादकी एक बात मुझे याद आती है। एक रिश्तेदारके मरते समय मैं मौजूद था। अँधेरी रात थी,—घरमें बाल बच्चे नौकर-चाकर कोई नहीं थे, सिर्फ यी उनकी सद्यःविधवा स्त्री और मैं। उनकी स्त्रीने तो शोकके आवेगमें छाती और सिर धुन-धुनकर ऐसा कांड मचा दिया कि

भय होने लगा कि कहीं उनके भी प्राण न निकल जायें। वे रो-रोकर बार-बार मुझसे पूछने लगीं कि 'जब मैं अपनी इच्छासे सह-मरण करना चाहती हूँ तो इसमें सरकारका क्या? मेरी तो अब रंचमात्र भी जीनेकी साध नहीं। इस बातको क्या सरकारी आदमी नहीं समझ सकते? उनके घरमें क्या स्त्रियाँ नहीं हैं? वे क्या पत्थरके हैं? और इस रातमें ही अगर गाँवके पाँच जने मिलकर नदी-किनारे मेरे सहमरणकी तैयारियाँ कर दें, तो थानेके लोगोंको मालूम ही कैसे होगा?' इसी तरहकी न-जाने कितनी बातें वे कहने लगीं। मगर, मेरा बैठे बैठे केवल उनका रोना सुननेसे ही तो काम नहीं चल सकता था! मुहल्लेमें खबर देना जरूरी था,—बहुत-सी चीजें इकट्ठी करनी थीं। परन्तु, मेरे बाहर जानेका प्रस्ताव सुनते ही वे प्रकृतिस्थ हो गईं। आँखें पोंछकर बोलीं—भइया, जो होना था, सो तो हो चुका, अब बाहर जाकर क्या होगा? रात बीत जाने दो न!

मैंने कहा—बहुत काम है, बिना जाये नहीं चलेगा।

उन्होंने कहा—रहने दो काम,—तुम बैठो।

मैंने कहा—बैठनेसे नहीं चलेगा, एक बार खबर तो देनी ही पड़ेगी।

इतना कहकर मैंने पैर बढ़ाया ही था कि वे एकाएक चिल्ला उठीं—अरे बापरे! मैं अकेली नहीं रह सकूँगी!

लिहाजा फिर बैठ जाना पड़ा। कारण तब यह समझमें आया कि, जिस पतिकी जीवित अवस्थामें उन्होंने बिना किसी डरके पचीस वर्ष तक अकेले घर-गिरस्ती की है, उसकी मृत्यु तो किसी तरह सही जा सकती है, पर उसका मृत शरीर इस अन्धकार-रात्रिमें पाँच मिनटके लिए भी उनसे नहीं सहा जायगा। छाती अगर किसी बातसे फटती है तो वह अपने मृत पतिके पास अकेले बैठे रहनेसे!

परन्तु, मेरा उद्देश्य उनके दुःखको तुच्छ करके दिखाना नहीं है। वह असली नहीं,—यह कहनेका भी मेरा अभिप्राय नहीं; अथवा, एक आदमीके व्यवहारसे ही उसकी अन्तिम भीमांसा हो गई, सो भी नहीं। परन्तु, ऐसी और भी एक घटना मुझे मालूम है, जिसका उल्लेख किये बिना ही मैं यह बात कहना चाहता हूँ कि सिर्फ कर्तव्य-ज्ञानके जोरसे, या बहुत समय तक एक साथ घर-गिरस्ती करनेके अधिकारसे ही कोई स्त्री भयको पार नहीं कर सकती। वह और कोई शक्ति है जिसका बहुत-से स्त्री-पुरुष सौ वर्ष तक एक साथ घर-गिरस्ती चलाते रहनेपर भी, सम्भव है, कुछ पता ही नहीं पाते।

परन्तु, सहसा उस शक्तिका परिचय जब किसी नर-नारीके निकट प्राप्त होता है, तब समाजकी अदालतमें असामी बनाकर उसे दंड देनेकी आवश्यकता हो तो हो; किन्तु, मनुष्यकी जो वस्तु सामाजिक नहीं है, वह स्वयं तो उसके दुःखसे चुपचाप आँसू बहाये वगैर किसी तरह रह नहीं सकती।

करीब दो महीने तक मृत्युंजयकी कोई खोज-खबर नहीं ली। जिन लोगोंने गाँवई-गाँव देखा नहीं है,—अथवा सिर्फ रेलके डब्बेमेंसे मुँह निकालकर देखा है, वे शायद आश्चर्यके साथ कहेंगे,—यह कैसी बात ? यह भी क्या कभी सम्भव हो सकता है कि स्वयं अपनी आँखोंसे इतनी खराब हालत देख आनेपर भी दो महीनेतक फिर कुछ खबर ही नहीं ली जाय ? उनकी जानकारीके लिए यह कहना जरूरी है कि यह सिर्फ सम्भव ही नहीं, बल्कि ऐसा ही हुआ करता है। किसी एकपर आफत आ पड़नेपर मुहल्ले-भरके लोग दल-बाँधकर उलट पड़ते हैं, ऐसी जो किम्बदन्ती है,—मालूम नहीं ऐसी दशा कभी सतयुगके गाँवोंमें थी या नहीं, परन्तु इस जमानेमें कहीं देखी हो, ऐसा तो नहीं याद पड़ता। मगर हाँ, जब कि उसके मरनेकी खबर नहीं मिली है तो वह जिन्दा जरूर होगा, इसमें शक नहीं।

इन्हीं दिनों सहसा एक दिन कानमें भनक पड़ी, मृत्युंजयके उस बागके हिस्सेदार चाचा शोर मचाते फिर रहे हैं कि, 'गया,—गया, गाँव अब बिलकुल रसातलमें चला गया ! समाजमें अब नाल्तेके भित्ति \* कहलाने लायक मुँह मेरा नहीं रहा,—नालायक एक सँपेरेकी लड़कीको निकाल करके घर ले आया है ! और सिर्फ निकाह ही नहीं, वह भी न हो तो चूल्हेमें जाय, उसक हाथका भात तक खा रहा है ! गाँवमें अगर इसका कोई शासन न रहा, तो सब जंगलमें जाकर क्यों नहीं बस जाते ! कोड़ांला और हरीपुरकी समाज इस बातका सुनेगी तो,—' इत्यादि इत्यादि। बस, फिर क्या था, लड़के-बूढ़े सभीके मुँहपर वही एक ही बात ! 'ऐं,—यह हुआ क्या ? कलिकाल क्या सचमुच ही उलटना चाहता है !'

चचा कहते फिरते हैं—ऐसा होगा, यह तो मैं पहलेहीसे जानता था। सिर्फ तमाशा देख रहा था, कहाँका पानी कहाँ जाकर मरता है ! नहीं तो, कोई गैर नहीं, पड़ोसी नहीं, अपना खास भतीजा था। मैं क्या उसे घर नहीं ले जा

---

\* एक खास स्थानका वंश, जिसका उन्हें गर्व है।

सकता था ? क्या डाक्टर-हकीमसे इलाज करानेकी मेरी शक्ति नहीं थी ? तो फिर किया क्यों नहीं, यह अब देखें सब-लोग । मगर अब तो चुप नहीं रहा जा सकता ! यह तो मित्तिर वंशका नाम ही डूबा जाता है ! गाँवके मुँहपर कालिख लगती है !

तब हम सब गाँवके लोगोंने मिलकर जो काम किया, उसकी याद आते ही मैं आज भी लजासे मरमर जाता हूँ । चचा चले नात्तेके मित्तिर-वंशके अभिभावक बनकर—और, हम दस-बारह जने उनके साथ चले, इसलिए कि गाँवके मुँहपर कालिख न लगने पावे ।

मृत्युंजयके गिरे हुए घरपर पहुँचा तो उस वक्त शाम हो चुकी थी । बिलासी टूटे-फूटे बरंडेके एक तरफ बैठी रोटी बना रही थी । अकस्मात्, इतने आदमियोंको लाठी-सोटा लिये हुए आँगनमें आते देख मारे डरके नीली पड़ गई ।

चचाने कोठरीके भीतर झाँककर देखा, मृत्युंजय लेटा हुआ है । बस, चटसे दरवाजेकी साँकल चढ़ाकर डरके मारे अधमरी उस लड़कीके साथ बातचीत करना शुरू कर दिया । यह तो कहना ही फजूल है कि दुनियामें किसी भी चचाने किसी भी जमानेमें भतीजेकी स्त्रीसे शायद ही वैसा सम्भाषण कभी किया हो । वह ऐसा था कि लड़की हीन सँपेरोंकी जातकी होनेपर भी उसे सह न सकी; आँखें उठाकर बोली—मेरे बापने बाबूके साथ मेरा निकाह कर दिया है, जानते हो !

चचाने कहा—अच्छा तो ठहर ! इत्यादि इत्यादि । और साथ-ही-साथ दस बारह जने वीर-दर्पसे हुंकारते हुए उसकी गरदनपर टूट पड़े । किसीने चुटिया पकड़ी, किसीने कान पकड़े और किसीने हाथ थाम लिये,—और जिन्हें यह सुयोग न मिला, वे भी निश्चेष्ट न रहे ।

कारण, संग्राम-क्षेत्रमें हम कापुरुषोंकी तरह चुपचाप खड़े रह सकते हैं,—हमारे विरुद्ध इतनी बड़ी बदनामी करते फिरनेमें शायद नारायणके कर्तृपक्षको भी आँखकी शरम मालूम हो ! यहाँपर एक अप्रासंगिक बात कह रखना चाहता हूँ । सुना है कि विलायत आदि म्लेच्छ देशोंमें पुरुषोंके मनमें एक कुसंस्कार बैठा हुआ है,—स्त्रियाँ कमजोर और निरुपाय हैं इसलिए उनपर हाथ नहीं उठाना चाहिए । यह भला कौन-सी बात हुई ! सनातन हिन्दू इस कुसंस्कारको नहीं मानते ।

हम कहते हैं कि जिसके शरीरमें जोर नहीं है, उसीपर हाथ उठाया जा सकता है। फिर, चाहे वह नर-नारी कोई भी क्यों न हो।

लड़की पहले ही जो एक बार आर्तनाद कर उठी थी, उसके बाद फिर एकदम चुप हो गई। परन्तु, हम लोग जब उसे गाँवके बाहर छोड़ आनेके लिए घसीटकर ले चले, तब वह निहोरे खा-खाकर कहने लगी—बाबू लोग, मुझे जरा-सा एक बार छोड़ दो, मैं रोटी घरमें रख आऊँ। बाहर सियार-कुत्ते खा जायँगे,—कमजोर आदमी ठहरे, रात-भर भूखे रहना पड़ेगा।

मृत्युंजय बन्द कोठरीमें पागलकी तरह सिर धुनने लगा, दरवाजेपर लॉते मारने लगा, और श्राव्य-अश्राव्य अनेक तरहकी भाषा प्रयोग करने लगा। परन्तु, हम लोग उससे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। अपने देशके कल्याणके लिए सब-कुछ अकातर-भावसे सहकर उसे घसीटते हुए ले चले!

‘ले चले’ इसलिए कह रहा हूँ कि मैं भी बराबर उनके साथ था। परन्तु, मालूम नहीं मुझमें कहाँ ऐसी कुछ कमजोरी छुपी थी, जिससे मैं उसपर हाथ न उठा सका। बल्कि, मैं तो भीतरसे रोने-सा लगा। उसने अत्यन्त अन्याय किया है और उसे गाँवसे बाहर निकाल देना ही उचित मालूम होता है; परन्तु, फिर भी, हम यह कोई अच्छा काम कर रहे हैं, यह भी मेरी समझमें न आ सका। पर, यह मेरी अपनी बात है, इसे जाने दो।

आप यह न समझ लें कि गाँवमें उदारताका बिलकुल ही अभाव है। हर-गिज़ नहीं। बल्कि, बड़े आदमी होनेपर हम ऐसी ऐसी उदारताएँ प्रकट करते हैं कि सुनकर आप दंग रह जायँगे !

यही मृत्युंजय अगर उसके हाथका भात खाकर अक्षम्य अपराध न करता, तो हम लोगोंको इतना गुस्सा न आता। और कायस्थके लड़केके साथ सँपेरेकी लड़कीका निकाह,—यह तो एक हँसीमें उड़ा देनेकी बात है। परन्तु, भात खाकर तो उसने अपना काल ही बुला लिया। वह अढ़ाई महीनेसे बीमार है तो हुआ करे, खाटपर पड़ा है तो पड़ा रहे, पर, इससे क्या भात खालेगा ? पूड़ी नहीं, बन्देश नहीं, बकरेका माँस नहीं ! भात खाना तो अन्न-पाप है ! उसे तो सचमुच ही माफ नहीं किया जा सकता ! इसलिए, गाँवई-गाँवके लोग संकीर्ण-चित्त नहीं हैं। चार कोस पाँयन-चली विद्या जिनके पेटमें है, वे ही तो किसी

दिन बड़े होकर समाजके शिरोमणि होते हैं ! देवी वीणापाणिने वरसे संकीर्णता उनमें आ कैसे सकती है ?

यही देखो न, इसके कुछ ही दिन बाद, प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय मुखोपाध्याय महाशयकी विधवा पुत्र-वधू मानसिक वैराग्यसे दो साल तक काशी-वास करके जब गाँवमें वापस आई, तब निन्दक लोग कानाफूँसी करने लगे कि आधी सम्पत्ति उस विधवाकी ठहरी और इस डरसे कि कहीं वह सम्पत्ति बेहाथ न हो जाय, छोटे बाबू बहुत कोशिश और बड़े परिश्रमसे बहूजीको जहाँसे लिवा लाये हैं, वह जरूर काशी ही होगी ! जो भी हो, छोटे बाबूने अपनी स्वाभाविक उदारतांस, गाँवकी पंचायती पूजामें दो सौ रुपये दान देकर, पाँच गाँवोंके ब्राह्मणोंको सदक्षिणा उत्तम फलाहार करानेके बाद, प्रत्येक सद-ब्राह्मणके हाथमें जब एक-एक काँसेका गिलास देकर विदा किया, तब चारों तरफ 'धन्य-धन्य'की धूम मच गई। यहाँ तक कि घर आते आते रास्तेमें ही बहुत-से लोग देश और देशके हितके लिए कामना करने लगे कि ऐसे जो सब बड़े आदमी हैं, उनके घर-घरमें महीने महीने ऐसे सदनुष्ठान क्यों नहीं हुआ करते ?

परन्तु, जाने दो। ऐसी महत्त्वकी कहानियाँ बहुत-सी हैं। युग-युगसे संचित होकर लगभग प्रत्येक ग्रामवासीके द्वारपर उनका स्तूप लग गया है। इसी दक्षिण बंगालके बहुत-से गाँवोंमें घूम-घूमकर गौरव करने-लायक बहुत-सी बड़ी बड़ी घटनाएँ मैंने प्रत्यक्ष देखी हैं। चाहे चरित्रमें कहो और चाहे धर्ममें, समाजमें कहो और चाहे विद्यामें,—शिक्षा बिलकुल पूरी हो गई है; अब सिर्फ अँग्रेजोंको कसके गाली गलौज कर सको तो बस देशका उद्धार हो जाय !

लगभग एक साल बीत गया है। मच्छड़ोंका काटना जब और नहीं सहा गया तब संन्यासीगीरीसे इस्तीफा देकर मैं घर लौट आया हूँ। एकदिन दोपहरके वक्त गाँवसे दो कोस दूर मालपाड़ेमेंसे जा रहा था, अचानक देखा कि एक कुटियाके द्वारपर मृत्युंजय बैठा है। उसके सिरपर गेरुआ रंगकी पगड़ी, बड़े बड़े बाल और दाढ़ी-मूँछें, गलेमें रुद्राक्ष और काँचकी मालायें,—कौन कह सकता है कि वह मृत्युंजय है ? कायस्थका लड़का, एक ही सालमें अपनी जात देकर बिलकुल सँपेरा हो गया। मनुष्य कितनी जल्दी अपनी चौदह-पीढ़ियोंकी जातको तिलांजलि देकर और कोई जात बन जाता है, यह एक बड़े भारी आश्चर्यकी बात है। ब्राह्मणका लड़का भंगिनकी लड़कीसे ब्याह करके भंगी हो

गया और उसीका रोजगार करने लगा, यह तो शायद आप सभी लोगोंने सुना होगा। मैंने सद्ब्राह्मणके एक लड़केको एन्ट्रेन्स पास करनेके बाद भी डोमकी लड़कीसे ब्याह करके डोम होते देखा है। अब वह सूप-डलियाँ आदि बनाकर बेचा करता है और सूअर चराया करता है ! एक अच्छे घरानेके कायस्थ-पुत्रको कसाईकी लड़कीके साथ ब्याह करके कसाई होते भी देखा है। आज वह अपने हाथसे गायें काटकर बेचता है,—उसे देखकर किसकी ताकत है जो कि कहे कि वह किसी समय कसाईके सिवा और भी कुछ था ! किन्तु, सबका ही यह एक ही कारण है। इसीसे मैं सोचता हूँ कि जो नारियाँ इस तरह इतनी आसानीसे पुरुषको खींचकर नीचे उतार सकती हैं, वे क्या उसी तरह हँसते-खेलते उन्हें जोर देकर ऊपर नहीं चढ़ा सकती ? जिन ग्रामवासी पुरुषोंकी सुख्याति करनेके लिए आज मैं पंचमुख हो उठा हूँ, यह गौरव क्या सिर्फ अकेले उन्हींको मिलना चाहिए ? क्या सिर्फ अपने ही बलपर वे इतनी जल्दी नीचेकी ओर उतरे चले जा रहे हैं ? अन्दरकी ओरसे क्या उनके लिए जरा भी उत्साह, जरा भी सहायता नहीं आती ?

मगर रहने दो। झोंकमें आकर शायद अनधिकार-चर्चा कर बैठूँ। परन्तु, मेरे लिए मुश्किल तो यह है कि मैं किसी भी तरह यह भूल नहीं सकता, कि देशके नव्वे फी-सदी नर और नारी गाँवोंमें ही रहकर आदमी होते हैं, और इसलिए कुछ-न-कुछ हमें करना ही चाहिए। खैर, अभी कह रहा था, देखकर कौन कहंसा कि यह वही मृत्युंजय है ? परन्तु, मुझे उसने खातिरदारीके साथ बिठाया। बिलासी तालाबसे पानी लाने गई थी, मुझे देखकर वह भी बहुत खुश हुई और बार बार कहने लगी—तुम न बचाते तो उस रातको वे मुझे मार ही डालते। मेरे ही लिए, तुमने भी न-जाने कितनी मार खाई होगी।

बातों-ही-बातोंमें सुना कि उसके दूसरे ही दिन वे यहाँ चले आये, और क्रमशः घर बनाकर यहीं सुखसे रह रहे हैं। सुखसे हैं,—यह बात मुझसे कहनेकी जरूरत नहीं थी, सिर्फ उनके चेहरेकी तरफ देखनेसे ही मैं समझ गया था।

सुना कि आज उन लोगोंको कहीं साँप पकड़ने जाना है, बयाना ले चुके हैं। वे तैयार हुए तो मैं भी संग जानेके लिए उछल पड़ा। बचपनसे ही दो बातोंपर मुझे बहुत अभिरुचि रही है। एक तो गोखुरा काला साँप पकड़कर पालना, और दूसरा मंत्र सिद्ध करना।

मंत्रसिद्ध होनेका उपाय अब तक मुझे ढूँढ़े नहीं मिला था, इसलिए, मृत्युंजयको

उस्तादके रूपमें पा लेनेकी आशासे मेरे आनन्दके मैं फूला न समाया । वह अपने नामी ससुरका शिष्य ठहरा, इसलिए, बड़ा-भारी आदमी है । मेरा भाग्य अकस्मात् ऐसा चमक उठेगा, इसे कौन सोच सकता था ?

लेकिन काम बहुत कठिन है, और खतरा भी है, इसलिए पहले तो उन लोगोंने आपत्ति की; परन्तु, मैंने ऐसी ज़िद पकड़ी कि एक ही महीनेमें मुझे शागिर्द बिना बनाये उसे और कोई रास्ता ही न सूझा ! मृत्युंजयने मुझे साँप पकड़नेका मंत्र और तरकीब सिखा दी और कलाईमें दवा-वाला एक ताम्रज बाँधकर बाकायदा सँपेरा बना दिया !

मंत्र क्या था, जानते हैं ? उसका आखिरी हिस्सा मुझे याद है—

“ ओ रे केउट, तू मनसाका बाहन, मनसा देवी मेरी मा—

उलट-पलट पाताल फोड़—ढोंड़ाका विष तू ले,

तेरा विष ढोंड़ाको दे—दूधराज, मणिराज !

किसकी आज्ञासे—विषहरीकी आज्ञासे ! ”

इसके मानी क्या हैं, मैं नहीं जानता । कारण, जो इस मंत्रके स्रष्टा ऋषि थे,—निश्चय है कि कोई न कोई होंगे ही,—उनके दर्शन कभी नहीं हुए ।

अन्तमें, एक दिन इस मंत्रके सत्य-मिथ्याकी चरम मीमांसा हो गई; किन्तु, जब तक न हुई, तब तक मैं साँप पकड़नेमें चारों तरफ प्रसिद्ध हो गया । सभी-कोई कहने लगे,—हाँ, नैड़ा है तो गुणी आदमी । संन्यासी अवस्थामें कामाख्या जाकर सिद्ध हो आया है । इतनी-सी उमरमें इतना बड़ा उस्ताद हो जानेसे ऐसी हालत हो गई कि फिर मेरे जमीनपर पैर ही न पड़ते थे ।

विश्वास नहीं किया सिर्फ दो आदमियोंने । मेरा जो गुरु था, वह तो भली-बुरी कोई बात ही नहीं कहता था । परन्तु, बिलासी बीच-बीचमें मुस्कराती हुई कहती, ‘ महाराज, ये सब भयंकर जानवर ठहरे, इन्हें जरा सावधानीसे हिलाया-डुलाया करो । ’ सचमुच, विष-दाँत तांडे हुए साँपोंके मुँहसे विष निकालना आदि काम मैं ऐसी लापरवाहीके साथ करने लगा था कि उसकी याद आते ही आज भी मेरा शरीर काँप उठता है ।

असल बाबू यह है कि साँप पकड़ना कुछ कठिन नहीं है, और पकड़े हुए साँपको दो-चार दिन हँडियामें बन्द रखनेके बाद, चाहे उसके विष-दाँत

तोड़े जायँ या न जायँ, वह किसी तरह काटना ही नहीं चाहता । फन उठाकर काटनेका बहाना-भर करेगा, डरायेगा, पर काटेगा नहीं ।

कभी कभी हम दोनों गुरु-शिष्योंके साथ बिलासी बहस किया करती थी । सँपेरोँके लिए सबसे बढ़कर नफेका रोज़गार है जड़ी बेचना,—जिसे देखते ही साँपको भागते ही बने ! परन्तु, उससे पहले मामूली-सा एक काम करना पड़ता है । जिस साँपको जड़ी दिखाकर भगाना हो, पहले उसका मुँह गरम लोहेकी सींकेसे कई बार दाग दो; फिर उसे चाहे जड़ी दिखाई जाय चाहे और कोई भी मामूली-सी सींक, उसे भागकर जान बचानेकी ही सूझेगी । इस कामके विरुद्ध बिलासीको बड़ी ज़बरदस्त आपत्ति थी, वह मृत्युंजयसे कहती—देखो, इस तरहसे आदमीको नहीं ठगना चाहिए ।

मृत्युंजय कहता—सभी तो ऐसा करते हैं, इसमें दोष क्या है ?

बिलासी कहती—करने दो सबको । हम लोगोंको तो खाने-पीनेकी फिकर नहीं है; फिर, हम क्यों लोगोंको झूठ-मूठ धोखा दें ?

और एक बातपर मैंने बराबर लक्ष्य किया है । साँप पकड़नेके लिए बयाना आते ही बिलासी उसमें तरह-तरहसँ विघ्न डालनेकी कोशिश किया करती,—आज शनिवार है तो आज मंगलवार है,—इसी तरहसे न-जानें क्या-क्या कह दिया करती । मृत्युंजय घरपर न रहता, तब तो वह सफा ही भगा दिया करती; परन्तु, मौजूद रहनेपर मृत्युंजय रुपयेका लोभ न सम्हाल सकता । और मुझे तो एक तरहका नशा-सा हो गया था । नाना प्रकारसे उसे उत्तेजित करनेमें मैं कुछ उठा नहीं रखता था । वास्तवमें, इसमें मजेके सिवा डर भी कहीं है, यह बात हमारे मनमें कभी आती ही न थी । परन्तु, इस पापका दंड एक दिन मुझे अच्छी तरह भुगतना पड़ा ।

उस दिन गाँवसे डेढ़ कोस दूर एक ग्वालाके घरमें साँप पकड़ने गया था । बिलासी बराबर ही साथ रहती थी, आज भी थी । मिट्टीकी मढ़ैयामें ढूँढ़ते ढूँढ़ते जमीनमें एक जगह बिलका चिह्न पाया गया । हममेंसे किसीने लक्ष्य नहीं किया; परन्तु, बिलासी ठहरी सँपेरेकी लड़की,—उसने झुककर कागजके कुछ टुकड़े उठाते हुए मुझसे कहा—महाराज, जरा होशियारीसे खोदना । साँप एक ही नहीं है, जोड़ा तो है ही, शायद और भी ज्यादा हों ।

मृत्युंजयने कहा—ये लोग तो कहते हैं, एक ही आकर घुसा है। एक ही दिखाई दिया है।

बिलासीने कागज दिखाते हुए कहा—देखते नहीं, उन्होंने यहाँ रहनेकी जगह बनाई है ?

मृत्युंजयने कहा—कागज तो चूहे भी ला सकते हैं ?

बिलासीने कहा—दोनों ही बातें हो सकती हैं। मगर, दो तो अवश्य हैं, मैं कहती हूँ।

वास्तवमें बिलासीकी बात ही ठीक निकली और ऐसी ठीक निकली कि मर्मान्तिक रूपसे। दसेक मिनटके भीतर ही एक बड़ा जबरदस्त 'खरिश-गोखुरा' काला-साँप पकड़कर मृत्युंजयने मेरे हाथमें दे दिया। परन्तु मैं उसे अपनी पेटीमें बन्द करके लौटा भी न था कि मृत्युंजय "उ;" करके साँस छोड़कर बाहर आ खड़ा हुआ। उसकी हथेलीकी पीठसे झर-झर खून गिर रहा था।

पहले तो सभी किं-कर्तव्य-विमूढ़-से हो गये। कारण, साँपको पकड़ने जाओ और वह भागनेके लिए व्याकुल न होकर बिलमेंसे मुँह निकालकर काट खावे, ऐसी कल्पनातीत घटना तो जीवनमें यही पहले-पहल देखी थी। दूसरे ही क्षण बिलासी चिल्लाती हुई दौड़ी, उसने अपने आँचलसे उसका हाथ बाँध दिया, और जितनी भी तरहकी जड़ी बूटियाँ वह साथमें लाई थी, सब उसे चबानेको दे दीं। मृत्युंजयका अपना तान्बीज तो था ही, उसपर मैंने अपना तान्बीज भी उतारकर उसे पहना दिया। आशा थी, विष उसके ऊपर अब नहीं चढ़ेगा, और मैं अपने उस 'विष-हरीकी आशा' वाले मंत्रको बार-बार जोर-जोरसे पढ़ने लगा। चारों तरफ भीड़ जम गई, और आस-पास जितने भी गुणी लोग थे, सबको खबर देनेके लिए चारों तरफ आदमी दौड़ाये गये। बिलासीके बापको भी खबर देनेके लिए आदमी भेजा गया।

मैं अविराम गतिसे, बिना रुके हुए, मंत्र पढ़ता रहा; परन्तु, कुछ सेहत होते नहीं दिखाई दी। फिर भी, मंत्र-पाठ समान रूपसे चालू रहा। परन्तु, पंद्रह-बीस मिनट बाद जब मृत्युंजय एक बार वमन करके नाकके स्वरमें बातें करने लगा, तब तो बिलासी एकदम पछाड़ खाकर जमीनपर गिर पड़ी। मैं भी समझ गया, मेरी विषहरीकी दुहाई अब काममें नहीं आनेकी।

आस-पासके और भी दो-चार उस्ताद आ पहुँचे, हम लाग कभी तो एक साथ और कभी अलग अलग, तेतीस करोड़ देव-देवियोंकी दुहाई देने लगे। परन्तु विषने एक भी दुहाई नहीं मानी, रोगीकी हालत बराबर खराब होती चली गई। जब देखा गया कि अच्छी बातोंसे काम नहीं चलेगा, तब तीन-चार ओझोंने मिलकर विषको ऐसी अकथ्य और अश्राव्य भाषामें गाली-गलौज करना शुरू किया कि अगर विषके कान होते तो, मृत्युंजयको छोड़नेकी तो बात ही क्या, वह देशको ही छोड़कर भाग जाता। मगर, किसीसे भी कुछ न बना। और भी आध घंटे जूझनेके बाद, रोगीने अपने पिता-माताके दिये हुए मृत्युंजय नाम और अपने समुरके दिये हुए मंत्र-ओषधि आदि सबको मिथ्या प्रमाणित करके इहलोककी लीला समाप्त की। बिलासी अपने पतिका सिर गोदमें रखे बैठी थी, वह मानो बिल्कुल पत्थर-सी हो गई।

जाने दो, उसके दुःखकी कहानी अब बढ़ाना नहीं चाहता। सिर्फ इतना कहकर खतम कर दूँगा कि वह सात दिनसे ज्यादा अपना जिन्दा रहना सह न सकी। मुझसे एक दिन उसने सिर्फ यह कहा—महाराज, मेरे सरकी कसम है, इस कामको तुम अब कभी न करना।

मैं अपना ताबीज और कवच तो मृत्युंजयके साथ-ही-साथ दफना चुका था, बच रही थी सिर्फ विपहरीकी आज्ञा। परन्तु, वह आज्ञा कोई मजिस्ट्रेटकी आज्ञा नहीं और साँपका विष हिन्दुस्तानियोंका विष नहीं—इस बातको मैं भी समझ गया था।

एक दिन जाकर सुना—घरमें जहरकी तो कमी थी नहीं,—बिलासीने आत्म-हत्या कर ली है; और, शास्त्रोंके अनुसार, निश्चय ही वह नरक गई है। परन्तु, वह कहीं भी जाय, जब मेरा अपना जानेका समय आयेगा, तब इतना तो मैं कह सकता हूँ कि वैसे ही किसी एक नरकमें जानेके प्रस्तावसे मैं पीछे न हटूँगा।

चचा साहब सालहों-आने बगीचेपर दखल जमाकर अत्यन्त विज्ञकी भाँति चारों तरफ कहते फिरने लगे—उसकी अपघात मृत्यु न होगी तो होगी किसकी? मर्द वैसी एक छोड़ दस करे न, उससे तो कुछ बनता-बिगड़ता नहीं!—बहुत होगा तो जरा निन्दा हो जायगी। मगर, उसके हाथका भात खाकर मौत क्यों बुलाई भला? खुद मरा, और मेरा भी सिर नीचा करा गया। न तो कोई आग देनेवाला रहा और न कोई पिण्डा-यानी देनेवाला। श्राद्ध-शान्ति कुछ भी नहीं हुई।

गाँवके लोग एक स्वरसे कहने लगे—इसमें क्या शक है ! अन्न-पाप है ! बाप रे, इसका क्या कोई प्रायश्चित्त है !

बिलासीकी आत्महत्याकी घटना भी बहुतोंके लिए परिहासका विषय हो गया। मैं अकसर सोचा करता हूँ, यह अपराध शायद उन दोनोंने ही किया था,—परन्तु, मृत्युंजय तो गँवई-गाँवका ही लड़का था, देहातके तेल-पानीसे ही तो इतना बड़ा हुआ था। फिर भी, उसे इतने दुःसाहसके काममें प्रवृत्त कराया था जिम वस्तुनं, उस किसीने आँख खोलकर देखा तक नहीं !

मुझे मालूम होता है, जिस देशके नर-नारियोंमें परस्पर हृदय जय करके विवाह करनेकी रीति नहीं है,—बल्कि, वह निन्दाकी चीज़ है, जिस देशके स्त्री-पुरुष आशा करनेके सौभाग्य और आकांक्षा करनेके भयंकर आनन्दसे हमेशाके लिए वंचित हैं, जिन्हें विजयका गर्व और पराजयकी व्यथा,—इनमेंसे किसीको भी अपने जीवनमें वहन नहीं करना पड़ता, जिनके भूल करनेका दुःख और भूल न करनेका आत्मप्रसाद दोनोंमेंसे एक भी बला नहीं, जिनके प्राचीन और बहुदर्शी विज्ञ समाजने बहुत ही सावधानीसे देशके लोगोंको सब तरहके हंगामोंसे अलग रहकर आजीवन केवल भले-आदमी बने रहनेकी व्यवस्था कर दी है,—इसीसे विवाह-संस्कार जिनके लिए महज एक कन्ट्राक्ट (contract) है,—फिर वह चाहे कितना ही वैदिक मंत्रसे डॉकुमेन्ट-(document) शुदा पक्का क्यों न हो गया हो, उस देशके लोगोंमें इतना सामर्थ्य नहीं कि मृत्युंजयके अन्न-पापका कारण समझ सकें। बिलासीका जिन लोगोंने मज़ाक उड़ाया था, वे सभी साधु गृहस्थ और साधु गृहिणियाँ थीं,—उन सबको अक्षय सती-लोक प्राप्त होगा, यह भी मैं जानता हूँ; परन्तु, वह सँपरेकी लड़की जब एक पीड़ित और शय्यागत रोगीको तिल तिल करके जीत रही थी, उसके उस समयके गौरवका कणमात्र भी शायद आज तक उनमेंसे किसीने आँखों नहीं देखा। मृत्युंजय, हो सकता है कि, एक बहुत ही तुच्छ आदमी हो; किन्तु, उसका हृदय जीतकर उसपर कब्जा करनेका आनन्द तो तुच्छ नहीं था, उसकी वह सम्पदा तो मामूली नहीं थी !

इस देशके लोगोंके लिए इस चीजका ही समझ सकना कठिन है। मैं भूदेव मुखर्जीके 'पारिवारिक निबन्धों' को भी दोष नहीं दूँगा और शास्त्रीय तथा सामाजिक विधि-विधानोंकी भी निन्दा न करूँगा। और, करनेपर मुँहपर

जवाब देते हुए जो कहेंगे कि,—यह हिन्दू-समाज अपने विधि-विधानोंके जोरसे ही, इतनी शताब्दियोंके इतने विद्रोह-तूफानोंके बाद भी जीवित है, मैं उनकी भी अत्यन्त भक्ति करता हूँ। प्रत्युत्तरमें उनसे मैं यह हरगिज़ न कहूँगा कि जीवित रहना ही चरम सार्थकता है;—ऐसे तो अतिकाय हाथी तक लुप्त हो गये हैं और तिल-चट्टे जीवित हैं। मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि बड़े आदमीके ‘नन्द गोपालकी’ तरह दिन-रात आँखोंमें और गोद-ही गोदमें रखनेसे वह अच्छा तो रहेगा,—इसमें सन्देह नहीं, परन्तु, बिलकुल ही तिलचट्टेकी तरह जिलाये रखनेकी अपेक्षा अगर उसे एक बार गोदसे उतारकर और भी पाँच आदमियोंकी तरह दो-एक कदम पैदल चलने दिया जाय, तो शायद प्रायश्चित्त करने-लायक पाप न होगा।

समाप्त

# एकादशी बैरागी

**का**लीदह ब्राह्मण-प्रधान गाँव है। यहाँके गोपाल मुखोपाध्यायका लड़का अपूर्व बचपनसे ही लड़कोंका सरदार था। अबकी बार जब वह पाँच-छै बरस कलकत्तेके मेसमें रहकर ऑनर-समेत बी० ए० पास करके घर लौटा, तब गाँवमें उसकी प्रभाव-प्रतिष्ठाका कोई ठिकाना न रहा। गाँवमें एक जीर्ण-शीर्ण स्कूल था। बराबरकी उमरवाले उसके साथियोंने इसी बीचमें अपना पढ़ना लिखना समाप्त करके, सन्ध्या-पूजा छोड़कर, दस-आना छै-आना बाल छँटवाना शुरू कर दिया था; परन्तु, कलकत्तेसे लौटे हुए इस ग्रैजुएट छोकरेके सिरके बाल समान और उसके बीचों-बीच एक मोटी चोटीकी स्थापना देखकर,—सिर्फ छोकरे ही क्यों, उनके बाप-ताऊ तक आश्चर्यसे दंग रह गये। अपूर्व, शहरकी सभी समितियोंमें शामिल होकर, ज्ञानी पुरुषोंके भाषण सुनकर, सनातन हिन्दू धर्मके अनेक निगूढ़ रहस्योंका मर्मोद्घाटन करके, देश पहुँचा था। अब वह अपने साथियोंमें इसी बातका मुक्त कंठसे प्रचार करने लगा कि इस हिन्दू धर्मके समान सनातन धर्म और नहीं है। कारण, इसकी प्रत्येक व्यवस्था विज्ञान-सम्मत है। चोटीकी वैद्युदिक उपयोगिता, शरीर-रक्षाके बारेमें सन्ध्या-पूजाकी परम उपकारिता, कच्चे केले खानेकी रासायनिक प्रतिक्रिया इत्यादि अनेक अज्ञात तत्त्वोंकी व्याख्या सुनकर गाँवके बच्चे-बूढ़े-जवान सभी मुग्ध हो गये; और, उसका फल यह हुआ कि थोड़े ही समयके भीतर लड़कोंने चोटीसे शुरू करके सन्ध्या-पूजा, एकादशी पूर्णिमा और गंगा-स्नानतककी ऐसी धूम मचा दी कि उनके सामने घरकी औरतें तक हार मान गईं।

हिन्दू धर्मके पुनरुद्धार और देशोद्धार इत्यादिकी जल्पना-कल्पनासे युवकोंमें एकदम शोर मच गया। बड़े बूढ़े कहने लगे—हाँ, गोपाल मुखर्जीके भाग्यको

कहेंगे ! लक्ष्मीजीकी जैसी सुदृष्टि है, सन्तान भी वैसी ही पैदा हुई ! नहीं तो, आजकलके जमानेमें इतना अँगरेजी पढ़-लिखकर भी इस उमरमें धर्ममें ऐसी मति-गति कितनोंमें पाई जाती है ! लिहाजा देशमें अपूर्व एक अपूर्व वस्तु हो उठा । उसकी हिन्दू-धर्म-प्रचारिणी, धूम्रपान-निवारिणी और दुर्नीति-दलनी—इन तीन तीन सभाओंकी उछल-कूदसे गाँवके किसान-मजदूरोंका दल तक संतुष्ट हो उठा । पाँचकौड़ी तेवरने ताड़ी पीकर अपनी स्त्रीको पीटा है, यह सुनकर अपूर्वने पूरे दलबलके साथ पाँच कौड़ीके घर जाकर उसे ऐसा डोंटा-डराया कि दूसरे ही दिन उसकी स्त्री अपने पतिको लेकर मायके भाग गई ! भगा कावरा बहुत रात बीत, बम्बसे मछली पकड़कर घर लौटते समय, गाँजेकी झोंकमें शायद ' विद्यासुन्दर ' नाटककी मालिनीका गाना गा रहा था; ब्राह्मणपाड़ेके अविनाशने उसे सुन लिया तो उसने उसकी नाकसे खून बहा दिया,—तब कहीं छोड़ा । दुर्गा डोमका चौदह-पन्द्रह सालका लड़का बीड़ी पीता हुआ मैदानसे जा रहा था; उसपर अपूर्वके दलके एक छोकरेकी निगाह पड़ गई; बस, उसने उसकी पीठपर जलती हुई बीड़ी दागकर फलक उठा दिया !

इस तरह अपूर्वकी हिन्दूधर्म-प्रचारिणी और दुर्नीति-दलनी सभाने भानुमतीके आमके पेड़की तरह बातकी बातमें फूल और फलेंस कालीदह गाँवको छा दिया । अब गाँवकी मानसिक उन्नतिकी तरफ नजर दौड़ाई गई तो अपूर्वने देखा कि स्कूलकी लाइब्रेरीमें शशिभूषणके डेढ़ मानचित्र और बंकिमचन्द्रके अढ़ाई उपन्यासोंके सिवा और कुछ नहीं है । इस दीनताके लिए उसने हेड-मास्टरको बहुत ही बुरी तरह फटकारा और वह स्वयं ही लाइब्रेरीके संगठन-कार्यमें कमर कसकर लग गया । उसके सभापतित्वमें चन्देकी लिस्ट, नियम-कानूनकी तालिका और पुस्तकोंकी सूची बननेमें विलम्ब न हुआ । इतने दिनों तक लड़कोंके धर्म-प्रचारके उत्साहका तो गाँववाले किसी तरह सहते आये थे; परन्तु, अब दो-ही-एक दिनके अंदर उनका चन्दा वसूल करनेका उत्साह गाँवके नीच-ऊँच सभी गृहस्थोंके लिए ऐसा भयानक हो उठा कि खाता बगलमें लिये किसी भी लड़केको आते देखते ही वे घरके दरवाजे-जंगले सब बन्द कर देने लगे । साफ देखनेमें आया कि गाँवमें धर्म-प्रचार और दुर्नीति-दलनका रास्ता जितना चौड़ा पाया गया था, लाइब्रेरीके लिए धन-संग्रहका मार्ग उसके शतांशका एक-अंश भी प्रशस्त नहीं है । अपूर्व यह सोच ही

रहा था कि क्या करना चाहिए, इतनेमें सहसा एक जबरदस्त सुमार्ग उसके दृष्टिगोचर हो गया ।

स्कूलके पास ही एक परित्यक्त गिरा हुआ मकान था, उसकी ओर अपूर्वकी दृष्टि आकृष्ट हुई । सुननेमें आया कि वह 'एकादशी बैरागी' का मकान है । खोज करनेपर मालूम हुआ, कि कोई दस वर्ष पहले किसी एक गृहीत सामाजिक अपराध करनेके कारण ग्रामके ब्राह्मणोंने, धोबी-नाई-मोदी आदि बन्द करके, उसे घर छुड़ाकर गाँवसे निर्वासित कर दिया है । अब वह गाँवसे दो कोस उत्तरकी ओर बारुईपुर गाँवमें रहता है । यह आदमी, सुनते हैं, रुपयोंका 'घड़ियाल' है । इसका पुराना नाम क्या है, कोई नहीं कह सकता,— भंडा-फोड़के डरके मार बहुत दिनोंसे उसका व्यवहार नहीं किया गया; इस कारण, लोगोंकी स्मृतिसे वह बिल्कुल ही विलुप्त हो गया है । तबसे इसी 'एकादशी' नामसे बैरागी महाशय सुप्रसिद्ध हैं ।

अपूर्वने ताल ठोंककर कहा—रुपयेका घड़ियाल ! सामाजिक कदाचार ! तब तो, यही साला लाइब्रेरीका आधा भार उठानेके लिए बाध्य है । नहीं तो, वहाँ भी धोबी-नाई-मोदी बन्द ! बारुईपुरके जमींदार तो जीजीके मभिया ससुर हैं !

लड़के उन्मत्त हो उठे, और शीघ्र ही डोनेशन (सहायता) की लिस्टमें बैरागीके नामपर एक मोटी-सी रकम चढ़ा दी गई । एकादशीसे रुपये वसूल किये जायेंगे । न होंगे, तो अपूर्व अपनी जीजीके मभिया-ससुरसे कहकर वहाँके भी धोबी-नाई आदि बन्द करा देगा,—इस समाचारके मिलते ही पं० रसिक स्मृतिरत्न लाइब्रेरीके मंगलार्थ स्वयं-प्राथी होकर परामर्श दे गये, कि देखना है खूब बड़ी रकम बिना दिये, वह महापापी कालीदहमें अपना घर कैसे बचाता है ! गाँवमें न रहनेपर भी अपने उस घरसे एकादशीकी अत्यन्त ममता है,—यह बात रसिक पंडितसे छिपी न थी ।

लगभग दो साल पहले, इस जमीनको खरीदकर अपने बगीचेमें मिला लेनेके लिए पंडितजी, भरसक कोशिश करके भी, सफलमनोरथ न हो सके थे । उनके प्रस्ताव करनेपर उस समय एकादशीने अत्यन्त साधु-व्यक्तिकी तरह कानमें उँगली देकर कहा था, 'ऐसी आज्ञा न दीजिएगा पंडितजी महाराज, उस जरा-सी जमीनके बदले ब्राह्मणसे दाम लेना, यह मुझसे कभी नहीं हो सकता । वह ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे, तो मेरी सात पीढ़ियोंका सौभाग्य है ।' इसपर स्मृतिरत्नजीने अत्यन्त पुलकित-चित्तसे उसकी देव-द्विजपर

भक्ति-श्रद्धाकी लक्ष-कोटि प्रशंसा करके असंख्य आशीर्वाद दे डाले। इसके बाद एकादशीने हाथ जोड़कर सविनय निवेदन किया था “परन्तु, मैं ऐसा अभागी हूँ, पंडितजी, कि सात-पीढ़ीसे चला आया घर किसी भी तरह मुझसे छूट नहीं सकता। पिताजी मरते समय सिरकी सौगन्द देकर कह गये थे,—खानेको भी न मिले बेटा, तो भी अपना घर मत छोड़ना, ” इत्यादि इत्यादि। उस विद्वेषको स्मृति-रत्नजी भूले नहीं हैं।

पाँचेक दिन बाद, एक दिन, संभरे अपूर्वका दल दो कोस पैदल चलकर एकादशीके दरवाजेपर जाकर हाजिर हो गया। मिट्टीका घर था; पर था खूब साफ-सुथरा। देखनेसे मालूम होता था कि लक्ष्मीका निवास है। अपूर्व या उसके दलके और किसीने एकादशीको पहले कभी देखा नहीं था; इसलिए, चंडीमंडपमें पैर रखते ही उनका मन अरुचिसे भर गया। यह आदमी चाहे रुपयोंका घड़ियाल हो, चाहे मगर-मच्छ; पर, यह तो निःसन्देह है कि लाइब्रेरीके लिए इससे नन्हीं-सी मछलीका भी काम नहीं निकल सकता।

एकादशीके महाजनीका पेशा होता है। उमर साठसे ऊपर हो गई है। उसका सारा शरीर जैसा कुश है, वैसा ही शुष्क। गला तुलसीकी मालाओंसे भर रहा है। दाढ़ी-मूँछ सफाचट, और चेहरेकी तरफ देखनेसे मालूम नहीं होता कि कहीं भी उसमें लेशमात्र भी रस-कश है। ईख मशीनके पेषणसे अपना रस निकालकर जैसे अन्तमें खुद ही ईंधन बनके उसे जलाकर सुखा देती है, उसी तरह यह आदमी भी मानो मनुष्यको जलाकर शुष्क कर डालनेके लिए ही अपने सम्पूर्ण मनुष्यत्वको निचोड़कर विसर्जन करनेके लिए महाजन बना बैठा है। उसका सिर्फ चेहरा देखकर ही अपूर्वका मन ठण्डा हो गया। चंडीमंडपमें मामूली-सा फर्श बिछा हुआ है। बीचमें एकादशी विराजमान है। उसके सामने एक लकड़ीका हाथ-दाक्स है और एक तरफ बही-खाताका ढेर लगा है। एक बूढ़ा-सा गुमास्ता गलेमें जनेऊ लटकाये उधड़े-बदन बैठा सिलेटपर ब्याजका हिसाब लगा रहा है; और सामने, अगल-बगल बरंडेमें, खंभोंकी ओटमें, नाना उमर और नाना अवस्थाके स्त्री-पुरुष भ्रान्त मुँह लिये बैठे हुए हैं। कोई कर्ज लेने, कोई ब्याज देने, और कोई सिर्फ मुद्दत बढ़ानेकी भीख माँगने ही आया है; मगर, कर्ज चुकानेके लिए कोई बैठा हो, ऐसा तो किसीके चेहरेसे नहीं मालूम हुआ।

अकस्मात् बहुतेरे अपरिचित शरीफ घरोंके लड़कोंको देखकर एकादशीने

आश्चर्यान्वित होकर उनकी तरफ देखा। गुमास्तेने सिलेट रखते हुए कहा—  
कहाँसे आ रहे हैं ?

अपूर्वने कहा—कालीदहसे।

“ महाशय, आपलोग ? ”

“ हम सभी ब्राह्मण हैं । ”

ब्राह्मणका नाम सुनते ही एकादशीने बड़ी इज्जतके साथ खड़े होकर गरदन झुकाकर प्रणाम किया; और कहा—बैठनेकी आज्ञा हो।

सबके बैठ जानेपर एकादशी खुद भी बैठ गया। गुमास्तेने प्रश्न किया—  
आप लोगोंको क्या चाहिए ?

अपूर्वने लाइब्रेरीकी उपयोगिताके सम्बन्धमें थोड़ी-बहुत भूमिका बौधकर चन्दाकी बात छेड़ी, तो देखा कि, एकादशीकी गरदन दूसरी तरफ मुँड़ गई है। वह खंभेके पीछे बैठी हुई एक स्त्रीको सम्बोधित करके कह रहा है,—तुम क्या पागल हो गई हो हारूकी माँ ! ब्याज तो हुआ है सिर्फ सात रुपये दो आने, उसमेंसे भी दो आने छुड़वा लोगी ! इससे तो, गलेपर पैर दे जीभ निकालकर मुझे मार ही क्यों नहीं डालतीं ?

इसके बाद दोनोंने ऐसी खींचा-तानी शुरू कर दी,—मानो, इन्हीं दो आने पैसोंपर उनका जीवन निर्भर हो। मगर हारूकी माँ भी जैसी दृढ़प्रतिज्ञ थी, एकादशी भी वैसा ही अटल रहा। देर होते देख अपूर्व उन दोनोंके वाग्वितण्डाके बीचमें ही बोल उठा—हमारी लाइब्रेरीके बारेमें—

एकादशीने मुखातिब होकर कहा—जी, अभी सुनता हूँ,—क्यों रे नफर, तू क्या हमें सिरपर पाँव रखके डुबो देना चाहता है ? वे दो रुपये तो अभी तक चुकाये नहीं, फिर और एक रुपया माँगने किस मुँहसे चला आया ? हम पूछते हैं, ब्याज-याज भी कुछ लाया है ?

नफरके अंटीमेंसे एक आना पैसा निकालकर देते ही एकादशीने त्योरियाँ चढ़ाते हुए कहा—तीन महीने न हो गये रे ? और दो पैसे कहाँ हैं ?

नफरने हाथ जोड़ते हुए कहा—और नहीं हैं मालिक, धाड़ाके लड़केसे न जाने कितने हाथ-पाँव जोड़कर एक आना उधार लाया हूँ, बाकी दो पैसे अगली हाटके दिन दे जाऊँगा।

एकादशीने गरदन बढ़ाकर उसकी अंटीकी तरफ देखते हुए कहा—देखूँ तेरी वह अंटी ?

नफरने अपनी बाईं अंटी दिखाकर अभिमानके साथ कहा—दो पैसेके लिए झूठ बोलूँगा मालिक ! जो सुसरा पैसे लाकर भी तुम्हें धोखा दे, उसके मुँहमें कीड़े पड़ें,—कह दिया मैंने ।

एकादशीने तीक्ष्ण दृष्टिसे देखते हुए कहा - जैसे तू चार पैसे उधार ला सका, वैसे ही और दो पैसे तुझसे नहीं लाते बनें ?

नफरने गुस्सेमें आकर कहा—कसम न खा रहा हूँ मालिक ! मुँहमें कीड़े पड़ें—अपूर्वकी देहमें आग लग रही थी, उससे और नहीं सहा गया, वह बोल उठा—आप तो अच्छे आदमी मालूम होते हैं !

एकादशीने अपूर्वकी तरफ सिर्फ एक बार देख-भर लिया,—कुछ कहा नहीं । परानू बाग्दी सामनेके आँगनसँ जा रहा था; एकादशीने हाथके इशारेसे उसे बुलाकर कहा—परानू, नफरकी काँछ तो जरा खोल देख रे, पैसे दो बँधे हैं या नहीं ?

परानूक आगे बढ़ते ही नफरने गुस्सेमें आकर अपनी काँछकी खूँटमेंसे दो पैसे खोलकर एकादशीके सामने फेंक दिये । एकादशीको उसकी इस बेअदबीपर जरा भी गुस्सा न आया । गम्भीरताके साथ दो पैसे बॉक्समें डालकर उसने गुमास्तेसे कहा—घोपालजी, नफरके नाम सूद जमा कर लीजिए । और क्यों, एक रुपया लेकर तू अब क्या करेगा रे ?

नफरने कहा—बिना जरूरतके ही थोड़ा आया हूँ साहब ?

एकादशीने कहा—आठ आना ले जा न । पूरा रुपया ले जाकर तो इधर-उधर कर देगा, और क्या ?

उसके बाद बहुत घिसा-घिसी करंके नफर चौधरी बारह आने कर्ज लेनेमें सफल हुए ।

अंबर बहुत हाँ रही थी । अपूर्वके साथी अनाथनाथने चन्देकी लिस्ट एकादशीके सामने फेंककर कहा—जो देना है, दे दीजिए साहब, हम अब और नहीं ठहर सकते ।

एकादशीने लिस्ट उठाकर करीब पन्द्रह मिनट तक उसे शुरूसँ आखिर तक खूब अच्छी तरह गौरके साथ देखा और अन्तमें एक उसास लेकर उसे वापस करते हुए कहा—मैं बूढ़ा आदमी हूँ, मुझसँ चन्दा क्यों ?

अपूर्वने किसी तरह अपने गुस्सेको सम्हालते हुए कहा—बूढ़े आदमी रुपया न देंगे, तो क्या छोटे लड़के देंगे ? वे पायेंगे कहाँ, आप ही बताइए ?

बूढ़ेने इसका कोई उत्तर न देकर कहा—इस्कूलको तो बीस-पच्चीस साल हो

गये,—कहाँ, इतने दिनोंसे तो किसीने लाइब्रेरीकी बात नहीं उठाई बाबा ? खैर, जाने दो, यह कोई बुरा काम नहीं,—हमारे लड़के-बच्चे किताबें पढ़ें चाहे न पढ़ें, हमारे गाँवके लड़के तो पढ़ेंगे । क्या कहते हो घोषालजी !

घोषालने गरदन हिलाकर क्या कहा, कुछ समझमें न आया । एकादशीने कहा—अच्छा चन्दा तो दे दूँगा मैं,—किसी रोज आकर ले जाइयगा चार आने पैसे ।—क्यों घोषालजी, इससे कम तो अच्छा नहीं मालूम होता ! इतनी दूरसे आकर लड़कोंने घेरा है,—कुछ भी हो, नाम फैला हुआ है, इसीसे तो ! और भी लोग हैं, उनके पास तो कोई माँगने नहीं जाता,—क्यों जी, है कि नहीं ?

मारे गुस्सेके अपूर्वके मुँहसे बात नहीं निकली । अनार्यने कहा—इन्हीं चार आने पैसोंके लिए हम लोग इतनी दूरसे आये हैं ? सो भी, और किसी दिन आकर ले जाने होंगे ?

एकादशी मुँहसे एक शब्द करंकर सिर हिला-हिलाकर कहने लगा—देख तो ली हालत आपनं, हकंकर छै पैसे वसूल करनेमें नालायकोंसे कैसा ओछापन करना पड़ता है ! सो, इस पाटके बिके बिना और चन्दा देनेका सुभीता—

मारे गुस्सेके अपूर्वके ओठ काँपने लगे; बोला—सुभीता तो सब हो जायगा जब यहाँ भी नार्ह-धोयी बन्द कर दिये जायेंगे । नीच पिशाच कहींका, सारी देहमें तिलक-चन्दन लगाकर जात खाकर वैष्णव भगत बना बैठा है,—अच्छा !

विपिनने खड़े होकर एक उँगली उठाकर धमकाते हुए कहा—बारहपुरके राखालदास बाबू हमारे सम्बन्धी हैं,—याद रहे बैरागी !

बूढ़ा बैरागी इस अचिन्तनीय काण्डसे हतबुद्धि होकर देखता रह गया । पर, गाँवके लड़कोंके अकस्मात् इतने क्रोधका कारण उसकी समझमें ही नहीं आया । अपूर्वने कहा—गरीबोंका खून चूस-चूसकर खाना तुम्हारा निकालेंगे, तब छोड़ेंगे !

नफर अब तक बैठा हुआ था; उसकी काँछमेंसे दो पैसे निकलवा लेनेके कारण गुस्सेमें वह भीतर-ही-भीतर उफन रहा था । उसने कहा—जो कहा मालिकने, ठीक कहा । बैरागी नहीं, पिशाच है ! आँखोंके सामने देख तो लिया, किस तरह मुझसे दो पैसे वसूल कर लिये ?

बूढ़ेपर फटकार पड़नेसे, उपस्थित सभी-कोई मन-ही-मन निर्मल आनन्दका उपभोग करने लगे । उनके चेहरेका भाव ताड़कर विपिन उत्साहित होकर आँख मिचकाता हुआ बोल उठा—तुम लोग तो भीतरकी बातें जानते नहीं,—

लेकिन हमारे तो ये गाँवके आदमी हैं, हम लोग सब जानते हैं। क्यों जी बुढ़ऊ, हमारे गाँवमें क्यों तुम्हारे नाई-धोबी बन्द किये गये थे, कह दूँ ?

बात पुरानी थी। सभी-कोई जानते थे, एकादशी Xसद्गोपोंके घर पैदा हुआ है,—जात-वैष्णवोंमें नहीं। उसकी एक-मात्र सौतेली बहन प्रलोभनमें पड़कर कुलके बाहर चली गई; और, एकादशी उसे बड़े दुःखसे बहुत ढूँढ़-खोजकर घर वापस लाया। परन्तु, इस कुत्सित आचरणसे गाँवके लोग विस्मित और अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। फिर भी, एकादशी बिना मा-बापकी इस सौतेली छोटी बहनका किसी भी तरह न छोड़ सका। संसारमें उसके और कोई भी न था,—इसीको उसने बचपनसे गोदों खिला-पिलाकर इतना बड़ा किया था; बड़े ठाठ-वाटसे ब्याह दिया था; और फिर,—कम उमरमें विधवा हो जानेपर, अपने इसी भइयाके घर ही वह आदर-जतनके साथ लौट आई थी। उमर और बुद्धिके दोषसे उस बहनके इतने ज़बरदस्त पद-स्खलनसे बूढ़े-बेचारेने रोते-रोते घर भर दिया। खाना-पीना-सोना छोड़कर गाँव-गाँव और शहर-शहर छानकर अन्तमें जब बहनका पता लगाके उसे घर वापस ले आया तब गाँववालोंके निष्ठुर शासनको सिर-माथे रखकर, अपनी इस लज्जिता, अत्यन्त अनुत्ता, अभागिनी बहनको फिर घरसे निकालकर खुद प्रायश्चित्त करके जातमें शामिल होनेके लिए वह किसी भी तरह राजी न हो सका। उसके बाद गाँवमें उसके नाई-धोबी आदि बन्द कर दिये गये। अन्तमें, एकादशी निरुपाय हो भेष लेकर वैष्णव हो गया और इस बारुईपुरमें भाग आया। इस बातको सभी जानते थे; फिर भी, किसी दूसरे आदमीके मुँहसे और किसीकी कलंक-कहानीका माधुर्य लेनेके लिए सभी लोग उद्ग्रीव हो उठे। परन्तु, एकादशी लज्जासे, भयसे, बिलकुल सिटपिटा-सा गया। पर, वह अपने लिए नहीं, अपनी छोटी बहनके लिए। प्रथम यौवनके अपराधने गौरीके हृदयके भीतर जो गहरा घाव कर दिया था, आज भी वह वैसेका वैसा बना हुआ है,—जरा भी सूखा नहीं है; वृद्ध एकादशी इस बातको अच्छी तरह जानता है। कहीं-का कोई जरा-सा इशारा भी गौरीके कानोंतक जाकर उसके दर्दको हिला-डुलाकर ताजा न कर दे,—इस आशंकासे एकादशी

X 'सद्गोप' बंगालकी एक जाति है और 'वैष्णव' एक सम्प्रदाय। पर अब वैष्णव एक जातिके रूपमें ही समझे जाते हैं।

विपणमुखसे चुपचाप टुकुर-टुकुर देखता रहा। उसकी इस सकरुण दृष्टिकी नीरव विनीत प्रार्थनापर और किसीकी निगाह नहीं पड़ी; पर, अपूर्व सहसा इस बातको ताड़ गया और मोरे आश्चर्यके अवाक् हो गया।

विपिन कहने लगा—हम लोग क्या भिखारी हैं, जो ऐसी कड़ी धूपमें दो कोस रास्ता पैदल आकर चार आने पैसे भीख माँगने आये हैं?—सो भी आज नहीं,—न-जाने कब किस आसामीका पाट बिकेगा, उसकी खबर लेकर हम लोगोंको और एक दिन पैदल दौड़ना पड़ेगा! तब कहीं अगर बाबू साहबकी मेहरबानी हो जाय! लेकिन, लोगोंका खून चूसकर जो सूद खाया करते हो बुड्डे! सोचा होगा, कि जोंकपर जोंक नहीं बैठती, क्यों? अगर मैं यहाँ भी तुम्हारा हाल-बेहाल न कर दूँ तो मेरा नाम विपिन भट्टाचार्य नहीं! छोटी जातके पास पैसा हो गया है न, इसीलिए आँख-कानसे दिखाई-सुनाई नहीं देता, क्यों? चलो जी अपूर्व, हम लोग चलें,—फिर जो कुछ करना होगा, किया जायगा। कहकर वह अपूर्वका हाथ पकड़कर खींचने लगा।

करीब ग्यारह बज चुके थे; खासकर इतना रास्ता पैदल आनेके कारण अपूर्वको बहुत जोरकी प्यास लग रही थी, और कुछ देर पहले उसने नौकरसे पानी लानेको भी कह दिया था। उसके बाद इस कलह-विवादमें इसकी उसे याद ही नहीं रही। इतनेमें एक हाथमें पानीका गिलास और दूसरे हाथमें बतासोंसे भरी रकाबी लिये हुए एक सत्ताईस-अट्ठाईस वर्षकी विधवा स्त्रीने जब पासके दरवाजेसे प्रवेश किया, तब उसे अपने पानी मँगानेकी बात याद हो आई। गौरीको देखनेसे उसे कोई नीच जातिकी हरगिज़ नहीं कह सकता। सफेद पट्टवस्त्र पहनकर,—स्नान करके, तुरंत ही शायद संध्या-पूजा करने बैठी होगी; नौकरसे ब्राह्मणने जल मँगाया है,—सुनते ही वह संध्या-पूजा छोड़कर दौड़ी आई है। आनेके साथ ही उसने कहा—आप लोगोंमेंसे किसीको जल चाहिए था न?

विपिनने कहा—पाटकी साड़ी पहन लेनेसे ही क्या तुम्हारे हाथका पानी पी लेंगे हम लोग? अपूर्व, यही हैं वे विद्याधरी, देख लो!

पलक मारते ही उस विधवाके हाथसे बतासेकी रकाबी झन्न-से नीचे गिर पड़ी; और, उस असीम लज्जाको अपनी आँखोंसे देखकर, अपूर्व स्वयं शरमके मोरे

गड़ गया। उसने क्रोधके साथ विपिनको कुहनी मारते हुए कहा—यह सब क्या बन्दर-पन हो रहा है? ज़रा भी तुम्हें समय देखकर बोलनेका शऊर नहीं है!

विपिन गँवई-गाँवका आदमी ठहरा,—वह झगड़ेके समय दूसरेका मुँहके सामने अपमान करनेमें नर-नारीका भेदाभेद न रखनेवाला निष्पक्ष वीर पुरुष है; इसलिए, अपूर्वके बिगड़नेपर वह और भी निष्ठुर हो उठा। लाल लाल आँखें निकालकर जोरसे बोला—क्यों, कोई झूठी बात कह रहा हूँ क्या? उसकी इतनी हिम्मत हो गई कि ब्राह्मण घरानेके लड़कोंके लिए पानी लाती है! मैं बीच बजारमें भंडा फोड़ सकता हूँ, जानते हो?

अपूर्व समझ गया, अब तर्क नहीं चल सकता और उससे अपमानकी मांत्रा बढ़नेके सिवा घट नहीं सकती। बोला—मैंने ही लानेको कहा था विपिन, तुम बिना जाने यों ही झगड़ा मत करो, चलो, अब हम लोग चल दें।

गौरी रकाबी उठाकर, किसीकी भी तरफ बिना देखे, चुपचाप दरवाजेंक पीछे जाकर खड़ी हो गई और वहाँसे बोली—भइया, ये चन्दा लेने आये थे, तुमने दे दिया?

एकादशी अब तक विहलकी भौंति बैठा था, बहनक आह्वानसे चकित होकर बोला—नहीं बहन, अभी दिये देता हूँ।

अपूर्वकी तरफ देखकर उसने हाथ जोड़के कहा—बाबू साहब, मैं गरीब आदमी हूँ; चार आने ही मेरे लिए बहुत हैं,—दया करके ले लीजिए।

विपिन फिर कोई एक कड़ा जवाब देना ही चाहता था कि अपूर्वने इशारेसे उसे मना कर दिया; परन्तु, इतना काण्ड हो जानेके बाद फिर उसी चार आनेके प्रस्तावसे उसे खुद भी अत्यन्त घृणा मालूम हुई। अपनेको सम्हालते हुए उसने कहा—रहने दो बैरागी, तुम्हें कुछ भी न देना होगा।

एकादशी समझ गया,—यह गुस्सेकी बात है; एक उसाँस लेकर बोला—कलिकाल है! सुविधा पानेपर क्या कोई दूसरेकी गरदन मरोड़नेसे बाज आता है! दो घोपालजी, पाँच आने पैसे ही खर्च खाते लिख दो; और क्या करोगे बताओ? कहकर बैरागीने फिर एक लम्बी साँस ली। उसका चेहरा देखकर अपूर्वको अबकी हँसी आ गई। इस कुसीद-जीवी (सूद-खोर) वृद्धके लिए चार आने और पाँच आनेके बीच कितना बड़ा भेद है, इसे उसने मन-ही-मन समझ लिया और मन्द मुसकराकर कहा—रहने दो बैरागी, तुम्हें नहीं देना होगा। हम चार-पाँच आने पैसे चन्देमें नहीं लेते, अब हम लोग जाते हैं।

मालूम नहीं क्यों, अपूर्वको बहुत ही आशा थी कि इस पाँच-आनेके विरुद्ध कम-से-कम दरवाजेकी ओटमेंसे अवश्य प्रतिवाद होगा । उसके अंचलका छोर अब तक वहीं दीख रहा था; परन्तु, उसने कोई बात नहीं कही । जानेसे पहले अपूर्वने सचमुच ही बड़े क्षोभके साथ मन-ही-मन कहा, ये लोग वास्तवमें अत्यन्त क्षुद्र हैं । दान देनेके बारेमें पाँच आनेसे ज़्यादा ये सोच ही नहीं सकते । पैसे ही इनके प्राण हैं, पैसा ही इनका हड्डी-मांस है, पैसेके लिए संसारमें ऐसा कोई काम नहीं जो ये न कर सकते हों ।

अपूर्वके अपनं दलबल सहित उठ खड़े होते ही एक दस-ग्यारह वर्षके लड़केपर अनाथकी निगाह पड़ी । लड़केके गलेमें उत्तरीय X पड़ा था,—शायद, उसके घर पितृवियोग या ऐसी ही कोई दुर्घटना हुई होगी । उसकी विधवा माँ बरंडेमें खम्भेकी ओटमें बैठी थी । अनाथने आश्चर्यके साथ पूछा—पुंद्, तू यहाँ कैसे ?”

पुंद्ने उँगली दिखाकर कहा—मेरी माँ बैठी हैं । माँने कहा है, हमारे बहुत-सारे रुपया इनके पास जमा हैं । कहते हुए उसने एकादशीकी तरफ इशारा किया । इस बातको सुनकर सभी कोई विस्मित और कुतूहली हो उठे । अन्त तक इसका क्या होता है,—यह देखनेके लिए अपूर्व, खूब जोरकी प्यास होते हुए भी, विपिनका हाथ पकड़कर बैठ गया ।

एकादशीने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है बेटा ? कहाँ घर है ?

बच्चेने उत्तर दिया—मेरा नाम शशधर है, इन लोगोंके गाँवमें रहते हैं,—कालीदहमें ।

“ तुम्हारे बापका नाम क्या है ? ”

लड़केकी तरफसे अनाथने जवाब दिया—इसके बाप बहुत दिन हुए मर गये । बाबा रामलोचन चटर्जी अपने लड़केकी मृत्युके बाद घर-गृहस्थी छोड़कर बाहर निकल गये थे; सात वर्ष बाद, महीना-भर हुआ, वे फिर घर लौट आये थे कि परसों बेचारोंके घर आग लग गई, और आग बुझानेमें जलकर मर गये । और कोई है नहीं, बस यह एक नाती ही श्राद्धका अधिकारी बच रहा है ।

X बंगालमें माता-पिता या दादी-बाबा आदि किसीके मर जानेपर गलेमें कंरे कपड़ेकी एक धजी-सी पहनी जाती है, जो अशुचि दूर होने तक रहती है और क्रिया-कर्मके दिन उतर जाती है ।

—अनुवादक ।

इस बातको सुनकर सभीने दुःख प्रकट किया, सिर्फ एक एकादशी ही चुपचाप बैठा रहा। कुछ देर बाद उसने प्रश्न किया—रुपयोंकी हाथ-चिट्ठी है ? जाओ, अपनी माँसे पूछ आओ।

लड़का माँसे पूछ आया और बोला—कागज-पत्र कुछ नहीं है,—सब जल गये।

एकादशीने पूछा—कितने रुपये थे ?

अबकी बार विधवाने आगे बढ़कर माथेकी धोती नीची करते हुए कहा—बाबाजी मरनेसे पहले कह गये हैं, कि पाँच सौ रुपया जमा रखकर वे तीर्थ-यात्रा करने गये थे। बाबा, हम लोग बड़े गरीब हैं; सब रुपया न दो तो कमसे कम कुछ भीख ही हम लोगोंको दो। यह कहकर विधवा भीतर-ही-भीतर घुमड़-घुमड़के रोने लगी। घोषाल साहब अब तक खाता-बही लिखना छोड़कर एकाग्र-चित्तसे सब सुन रहे थे; अब उन्होंने आगे बढ़कर प्रश्न किया—हम पूछते हैं, कोई गवाही-अवाही भी है ?

विधवाने गरदन हिलाकर कहा—नहीं। हम लोग भी नहीं जानते थे। बाबाजी हम लोगोंसे छिपाके रुपये जमा करके चले गये थे।

घोषालने मृदु हास्यके साथ कहा—सिर्फ रोनेसे ही काम नहीं होता जी ! यह सब नकद रुपये-पैसेका मामला ठहरा ! गवाह नहीं, हाथ-चिट्ठी नहीं, तो फिर कैसे क्या होगा, बताओ ?

विधवा फूट-फूटकर रोने लगी; परन्तु, रोनेका नतीजा क्या होगा, सो किसीसे छिपा न था,—सब समझ रहे थे। अब एकादशीने बात की। घोषालकी तरफ देखकर कहा—हमें ख्याल आ रहा है, किसीने पाँच सौ रुपया जमा कराके फिर लिये नहीं हैं। तुम जरा पुराने खातोंमें ढूँढ़ो तो सही, कुछ लिखा-इखा है या नहीं ?

घोषालने झट्टाकर कहा—कौन इतनी अबरमें भूतकी बेगार करने जाय साहब ! न गवाह है, न रसीद-वसीद ही कुछ—

बात खतम होनेके पहले ही दरवाजेके पीछेसे जवाब आया—रसीद नहीं है, तो क्या ब्राह्मणके रुपये ही डूब जायँगे ? पुरानी बही देखिए,—आपसे न हो तो मुझे दीजिए मैं देखे देती हूँ।

सबने एक साथ विस्मित होकर दरवाजेकी तरफ आँख उठाकर देखा; मगर, जिसने हुक्म दिया था, वह दिखाई नहीं दी।

घोषालने जरा नरम होकर कहा—कई साल हो गये बेटी ! इतने दिनोंके खाते ढूँढ़ निकालना आसान काम नहीं है। खाते-बहियोंका कोई ठीक है, ढेर लगे हैं ! हाँ, सो जमा होंगे तो मिलेंगे क्यों नहीं ! फिर विधवाकी तरफ मुखातिब होकर कहा—तुम बेटी रोओ मत,—हकके रुपये होंगे तो मिलेंगे क्यों नहीं। अच्छा, कल हमारे घर आना; सब बातें पूछ-ताछकर बही-खाते देखके निकाल दूँगा। आज इतनी अबेर हो गई है, अभी तो होना मुश्किल है।

विधवाने उसी वक्त राजी होकर कहा—अच्छा, कल सबेरे ही आपके यहाँ आ जाऊँगी।

“आ जाना,” कहकर घोषालने गरदन हिलाते हुए सामनेके बही-खाते सब, उस दिनके लिए, बन्द कर दिये।

परन्तु, पूछताछ करनेके बहाने विधवाको अपने घरपर बुलानेका अर्थ बिलकुल स्पष्ट था। किवाड़ोंकी ओटमेंसे गौरीने कहा—आठ साल पहलेकी बात है तो, १९५१ संवतका खाता जरा निकालिए तो सही; रुपये जमा हैं या नहीं, सब मालूम हो जायगा।

घोषालने कहा—इतनी जल्दी क्या पड़ी है, बेटी ?

गौरीने कहा—मुझे दीजिए, मैं देखे देती हूँ। ब्राह्मणोंके घरकी बहू दो कोस पैदल चलके आई है, फिर दो कोस इस घाममें पैरों चलके जायगी, और फिर कल आपके पास आयगी; इतनी झंझटकी जरूरत क्या है घोषाल-काका ?

एकादशीने कहा—सच्ची ही तो कह रही है घोषालजी; ब्राह्मणकी बहूको झूठ-मूठ इधरसे उधर हैरान करना क्या अच्छा है ? देखो देखो, चटपट देख दो।

क्रुद्ध घोषाल महाशय तब बड़बड़ाते हुए उठे और बगलकी कोठरीमेंसे १९५१ सालका खाता निकाल लाये। दसके मिनट पन्ने उलट-पलटकर सहसा बहुत ही खुश होकर बोल उठे—वाह ! अपनी गौरी बेटीकी क्या याददास्त है ! ठीक उसी सालकी बहीमें जमा मिल गया ! यह रहा रामलोचन चटर्जीका जमा पाँच सौ—

एकादशीने कहा—अब जरा चटपट ब्याज तो जोड़ डालो, घोषालजी।

घोषालने आश्चर्यमें आकर कहा—अब ब्याज भी ?

एकादशीने कहा—क्यों, दोगे नहीं ? रुपया इतने दिनों तक काममें लगा रहा, रक्खा तो नहीं रहा ! आठ सालका सूद लगाओ,—इधरके कुछ महीनोंका छोड़ दो ।

जोड़नेपर सूद और असल मिलाकर कुल साढ़े सातसौ रुपये हुए । एकादशीने बहनको लक्ष्य करके कहा—बहन, रुपये निकाल ला सन्दूकमेंसे । क्यों पुंदूकी माँ, सब रुपये एक साथ ही ले जाओगी न ?

विधवाके अन्तरकी बात अन्तर्यामीने सुन ली; आँखें पोंछते हुए उसने एकादशीसे कहा—नहीं तो, इतने मुझे नहीं चाहिए; अभी सिर्फ पचास रुपये दे दो ।

“ सो ही ले जाओ बहू,—घोषालजी, बही मुझे दो जरा, सही कर दूँ; और बाकी रुपयोंका तुम एक रक्का लिख दो । ”

घोषालने कहा—मैं ही दस्तखत किये देता हूँ, आप क्यों—

एकादशीने कहा—नहीं नहीं, मुझे ही दो न,—अपनी आँखोंसे देख लूँ ।

कहते हुए उसने बही हाथमें ली, और आधेक मिनट उसे देख-दाखकर हँसते हुए कहा—घोषालजी, इसमें तो असली मांतीकी एक जोड़ी ब्राह्मणके नाम और जमा है । मैं तो जानता हूँ न,—आपको हर वक्त एक-सा नहीं दिखाई देता ।

यह कहता हुआ एकादशी दरवाजेकी तरफ देखकर जरा हँसा । इतने आदमियोंके सामने मालिककी व्यंग्योक्तिसे घोषालका मुँह काला हो गया ।

उस दिनका सब काम हो जानेपर अपूर्व जब अपने साथियोंको लेकर तपते हुए रास्तेपर निकल आया, तो उसके मनके भीतर एक क्रान्ति-सी मची हुई थी । घोषाल साथमें था, उसने विनयके साथ आह्वान करके कहा—आइए, इस गरीबके घर गुड़से ही सही, कमसे कम जरा पानी तो पी लीजिए ।

अपूर्व मुँहसे कुछ न कहकर चुपचाप पीछे पीछे चलने लगा । घोषालकी देह जली जा रही थी, उसने एकादशीको लक्ष्य करके कहा—देखी आपने इस छोटी जातके नालायककी हिमाकत ! आप जैसे ब्राह्मणोंके पैरोंकी धूल पड़ी घरमें,—हरामजादेकी सोलह पीढ़ियोंका अहोभाग्य समझो ! साला पिशाच है न, पाँच आने पैसे देकर भिखारी टरकाना चाहता है ।

विपिनने कहा—दो दिन ठहर जाइए न; हरामजादे महापापीको यहाँ भी नाई-धोबीका बहिष्कार कराकर पाँच आने पैसे देनेका मजा चखाये देता हूँ ! राखाल बाबू हमारे रिश्तेदार हैं,—हाँ, यह याद रखिएगा घोषाल साहब !

घोषालने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ। दोनों शाम संध्या-पूजा बिना किये पानी तक नहीं छूता। दो मोतियोंके लिए इस टीकाटीक दोपहरीमें कैसा मेरा मान गलत किया, आखोंसे देख तो लिया आपने ! नालायकका भला होगा ? इसका कभी खयाल भी मत कीजिए। और वह हरामजादी, जिसे छूनेसे नहाना पड़ता है, क्या करती है ! ब्राह्मणके पीनेके लिए पानी ले आती है ! रुपयेकी ठसक तो देखो जरा !

अपूर्वने अब तक एक भी बातमें अपनी बात नहीं मिलाई थी; चलते चलते सहसा वह बीच रास्तेमें खड़ा हो गया, बोला—अनाथ, मैं वापस लौट रहा हूँ भई,—मुझे बड़ी जोरसे प्यास लगी है।

घोषालने आश्चर्यके साथ कहा—लौटकर कहाँ जायँगे ? वह रहा, सामने ही तो मेरा मकान दीख रहा है।

अपूर्वने सिर हिलाकर कहा—आप इन लोगोंको ले जाइए,—मैं जाता हूँ वहीं एकादशीके घर पानी पीने।

एकादशीके घर पानी पीने ! सब-के-सब एक साथ तयारियाँ चढ़ाकर खंड हो गये। विपिनने उसका हाथ पकड़कर एक झटका देते हुए कहा—चल चल,—भरी दुपहरीमें,—ऐसी कड़ी धूपमें, बीच रास्तेपर मज़ाक अच्छा नहीं लगता। तुम तो जरूर जाओगे,—ऐसे ही हो न ! तुम पीओगे एकादशीकी बहनका छुआ पानी !

अपूर्वने अपना हाथ खींचकर हड़ताके साथ कहा—हाँ हाँ, सचमुच ही मैं उसका लाया हुआ वही पानी पीने जा रहा हूँ। तुम लोग घोषाल महाशयके यहाँसँ खा-पी आओ,—मैं उस पेड़के नीचे बैठा मिलूँगा।

उसके शान्त और स्थिर कंठस्वरसे हतबुद्धि होकर घोषालने कहा—इसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है, सो मालूम है ?

अनाथने कहा—पागल तो नहीं हो गये ?

अपूर्वने कहा—सो तो नहीं मालूम। पर, प्रायश्चित्त करना पड़ेगा,—तो वह उस समय धीरे-सुस्ते बैठकर सोचा जायगा। लेकिन, अभी तो नहीं रुक सकता।—कहता हुआ वह उसी चटकती हुई धूपमें जल्दी जल्दी एकादशीके घरकी ओर चल दिया।

# बाल्य-स्मृति

**ना**मकरण-संस्कारके समय, या तो मैं ठीक तौरसे तैयार नहीं हो पाया था, या फिर बाबाका ज्योतिष शास्त्रमें विशेष दखल न था,—किसी भी कारणसे हो, मेरा नाम 'सुकुमार' रखा गया। बहुत दिन न लगे, दो-ही-चार सालमें बाबा समझ गये कि नामके साथ मेरा कोई मेल नहीं मिलता। अब मैं बारह-तेरह वर्ष बादकी बात कहता हूँ। हालाँ कि मेरे आत्म-परिचयकी सब बातें कोई अच्छी तरह समझ नहीं सकेगा,—फिर भी—

सुनिए, हम लोग गँवई-गाँवके रहनेवाले हैं। बचपनसे मैं वहीं रहता आया हूँ। पिताजी पछाँहमें नौकरी करते थे। मेरा वहाँ जाना बहुत कम होता था,—नहींके बराबर। मैं दादीके पास गाँवहीमें रहा करता। घरमें मेरे ऊधमकी कोई हद न थी। एक वाक्यमें कहा जाय तो यों कहना चाहिए कि मैं एक छोटा-सा रावण था। बूढ़े बाबा जब कहते, 'तू कैसा हो गया है? किसीकी बात ही नहीं मानता। अब मैं तेरे बापको चिट्ठी लिखता हूँ।' तो मैं ज़रा हँसकर कहता, 'बाबा, वे दिन अब लद गये; बापकी तो चलाई क्या, अब मैं बापके बापसे भी नहीं डरता।' और कहीं दादी मौजूद रहतीं, तो फिर डरने ही क्यों लगा? बाबाकां वे ही कहतीं, 'क्यों, कैसा जवाब मिला?—और छेड़ोगे उसे?'

बाबा अगर नाराज़ होकर बाबूजीको चिट्ठी भी लिखते, तो उसी वक्त उनकी अफीमकी डिब्बिया दुबका देता। फिर जब तक उनसे चिट्ठी फड़वाकर फिकवा न देता, तब तक अफीमकी डिब्बिया न निकालता। इन सब औठपावोंके डरसे, खासकर नशेकी तलबमें खलल पड़ जानेसे, फिर वे मुझसे कुछ नहीं कहते। मैं भी मौज़ करता।

पर, सभी सुखोंकी आखिर एक सीमा है । मेरे लिए भी वही हुआ । बाबाके चचेरे भई गोविन्द बाबू बराबर इलाहाबाद ही नौकरी करते और वहीं रहते थे । अब वे पेन्शन लेकर गाँवमें आकर रहने लगे । उनके नाती श्रीमान् रजनीकान्त भी बी० ए० पास करके उनके साथ आये । मैं उन्हें 'सँझले भइया' कहता । पहले मुझसे उनका विशेष परिचय नहीं था । वे इस तरह बहुत कम आते थे और उनका मकान भी अलग था,—कभी आते भी, तो मेरी ओर ज्यादा ध्यान नहीं देते । कभी सामना हो जाता तो, 'क्यों रे, क्या करता है,—क्या पढ़ता है' के सिवा और कुछ नहीं कहते ।

अबकी बार जो वे आये, तो गाँवमें जमकर बैठे और मेरी ओर ज्यादा ध्यान देने लगे । दो-चार दिनकी बातचीतसे ही उन्होंने मुझे ऐसा बसमें कर लिया कि उन्हें देखते ही मुझे डर-सा हो जाता, मुँह सूख जाता, छाती धड़कने लगती,—जैसे मैंने कोई भारी कसूर किया हो, और उसकी न-जाने कितनी सजा मिलेगी ! और इसमें तो कोई शक ही न था कि उन दिनों मुझसे अकसर कसूर हुआ करता । हर वक्त कुछ न कुछ शरारत मुझसे होती ही रहती । दो-चार न करनेके काम और दो-चार औठपाव किये बिना मुझे चैन कहाँ ?

इतना डरनेपर भी भइयाको मैं चाहता खूब था । भाईभाईको इतना मान सकता है, यह मुझे पहले नहीं मालूम था । वे भी मुझे खूब प्यार करते थे । उनके निकट भी मैंने कितनी ही शरारतें कीं, कुसूर किये,—किन्तु, वे कुछ कहते नहीं थे; और कुछ कहते भी, तो मैं समझता कि बड़े भइया ठहरे, थोड़ी देर बाद वे भूल जायँगे,—उन्हें याद थोड़े ही रहता है !

अगर वे चाहते, तो शायद मुझे सुधार सकते; पर, उन्होंने कुछ भी नहीं किया । उनके देश आ जानेसे मैं पहलेकी तरह स्वाधीन तो न रहा; पर, फिर भी जैसा हूँ, मजेमें हूँ ।

रोज़ बाबाकी तमाखू चुराकर पी जाता । बूढ़े बाबा बेचारे कभी खाटके सिरहाने, कभी तकियेकी खोलीके भीतर,—कभी कहीं, कभी कहीं, तमाखू छिपा रखते, पर बन्दा ढूँढ़-ढाँढ़कर निकाल ही लेता और पी जाता । खाता-पीता मस्त रहता, मौजसे कटती । कोई झंझट नहीं, बला नहीं,—पढ़ना-लिखना तो एक तरहसे छोड़ ही दिया समझो । बागमें जाकर चिड़ियाँ मारता, गिलहरियाँ मारकर भूनके

खाता, जंगलमें जाकर गड़ढों गड़ढोंमें खरगोश ढूँढ़ता फिरता,—यही मेरा काम था । न किसीका कोई डर न कोई फिकर ।

पिताजी बक्सरमें नौकरी करते । वहाँसे न मुझे वे देखने आते, और न मारन आते । बाबा और दादीका हाल मैं पहले ही कह चुका हूँ । लिहाजा, एक वाक्यमें यों कहना चाहिए कि 'मैं मजेमें था ।'

एक दिन दोपहरको घर आकर दादीके मुँहसे सुना कि मुझे सँझले भइयाके साथ कलकत्ताम रहकर पढ़ना-लिखना पड़ेगा । आरामसे भर-पेट खा पीकर हुक्का भरकर मैं बाबाके पास पहुँचा और बोला—बाबा मुझे कलकत्ते जाना पड़ेगा ? बाबाने कहा—हाँ ।

मैंने पहलेहीसे सोच रखा था कि यह सब बाबाकी चालाकी है । इसलिए, कहा—यदि जाऊँगा तो आज ही जाऊँगा ।

बाबाने हँसते हुए कहा—इसके लिए चिन्ता क्यों करते हो बेटा ? रजनी आज ही कलकत्ते जायगा । मकान ठीक हो गया है, सो आज ही तो जाना होगा ।

मैं आग-बबूला हो उठा । एक तो उस दिन बाबाकी छिपाई हुई तमाखू ढूँढ़नेपर भी नहीं मिली,—जो एक चिलम मिली थी वह मेरी एक फूँकके लिए भी नहीं थी,—उसपर यह चालाकी ! परन्तु, मैं ठगा गया था अपने आप कबूल करके, फिर पीछे कैसे हटूँ ? लिहाजा, उसी दिन मुझे कलकत्तेके लिए खाना होना पड़ा । चलते वक्त बाबाके पैर छुए, और मैं मन-ही-मन बोला—भगवान करें, कल ही तुम्हारे कारजमें घर लौट आऊँ । उसके बाद फिर मुझे कौन कलकत्ते भेजता है, देख लूँगा ।



## २

**क**लकत्ते मैं पहल ही पहल आया । इतना बड़ा शहर पहले मैंने कभी नहीं देखा था । मैंने मन-ही-मन सोचा,—अगर मैं गंगाकी छातीपर तैरते हुए इस लकड़ी-लोहेके पुलपर ऐसी भीड़में, या वहाँ,—जहाँ छुंडके छुंड मस्तूलवाले बड़े बड़े जहाज खड़े हैं,—खो गया, तो फिर, कभी घर पहुँच सकूँगा, इसकी कोई उम्मीद ही नहीं । कलकत्ता मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगा । इतनी दहशतमें भला कोई चीज़ अच्छी लग सकती है ? आगे कभी लगेगी, इसका भी भरोसा नहीं कर सका ।

कहाँ गया हमारा वह नदीका किनारा,—वे बाँसोंके भिड़े, बेलके झाड़, मित्र-परिवारके बगीचेके कोनेका वह अमरूद,—कुछ भी तो नहीं है ! यहाँ तो सिर्फ बड़े बड़े ऊँच मकान, गाड़ी-घोड़े, आदमियोंका भीड़-भड़का, लम्बी-चौड़ी सड़कें ही दिखाई देती हैं,—मकानके पीछे ऐसा एक बाग-बगीचा भी तो नहीं, जहाँ छिपकर एक चिलम तमाखू पी सकूँ। मुझे रोना आ गया। आँसू पोंछकर मन-ही-मन कहने लगा,—भगवानने जीवन दिया है तो भोजन भी वे ही देंगे,—‘जिसने दिया है तनको, वही देगा कफनको।’

कलकत्ते आया हूँ, स्कूलमें भरती किया गया हूँ, अच्छी तरह पढ़ता-लिखता हूँ; लिहाजा आजकल मैं ‘अच्छा लड़का’ हो गया हूँ। देशमें जरूर मेरा नाम जाहिर हो गया था;—खैर, उस बातको जाने दो।

भइयांक आत्मीय-मित्रोंने मिलकर एक ‘मेस’ बना लिया है, जिसमें हम चार आदमी रहते हैं। भइया, मैं, राम बाबू और जगन्नाथ बाबू। राम बाबू और जगन्नाथ बाबू सँझले भइयांक मित्र हैं। इनके सिवा एक नौकर और एक ब्राह्मण रसोइया भी है।

गदाधर रसोइया मुझसे तीन-चार वर्ष बड़ा था। ऐसा भला आदमी मैंने पहले कभी नहीं देखा। मुहल्लेके किसी भी लड़केसे मेरी बातचीत नहीं हुई और न किसीसे मेल-जोल ही हुआ। मगर गदाधर, बिल्कुल भिन्न प्रकृतिका आदमी होनेपर भी, मेरा अन्तरंग मित्र हो गया। मेरे साथ उसकी खूब घुटती,—कितनी गप-शप उड़ती, इसका कोई ठिकाना नहीं। वह मेदिनीपुर जिलेके एक गाँवका रहनेवाला था, वहाँकी बातें और उसका बाल्य इतिहास आदि मुझे बड़ा अच्छा लगता था। उसके गाँवकी बातें मैंने इतनी बार सुनी हैं कि मुझे अगर उसके गाँवमें आँखपर पट्टी बाँधकर अकेला छोड़ दिया जाय तो, शायद, मैं तमाम गाँवमें और उसकं आस-पास मजेमें घूम-फिर सकता हूँ। इतवारको मैं उसके साथ किलेके मैदानमें घूमने जाया करता। शामको रसोईघरमें बैठकर ‘कोट-पीस’ खेला करता। रोटी खानेके बाद चौका उठ जानेपर उसके छोटे हुक्केसे दोनों मिलकर तमाखू भी पी लिया करते। सभी काम हम दोनों मिलकर एक साथ करते। मुहल्ले-पड़ोसमें और किसीसे मेरी जान-पहिचान नहीं हुई। मेरा तो साथी-संगी, यार-दोस्त,—गाँवका भोला, सुन्नी, लल्लू,—जो कुछ है, सब वही है। उसके मुँहसे मैंने कभी, ‘छोटे मुँह बड़ी

बात' नहीं सुनी। झूठमूठ ही सब उसका निरादर करते। इससे मेरा जी जलने लगता; पर, वह अपनी ज़बानसे कभी किसीको जवाब न देता,—जैसे वास्तवमें वह दोषी ही हो।

सबको खिला-पिलाकर सबसे पीछे जब वह रसोईघरके एक कोनेमें छिपकर छोटी-सी पीतलकी थालीमें खाने बैठता, तो मैं हजार काम छोड़कर वहाँ पहुँच जाता। बेचारेकी तकदीर ही ऐसी थी कि पीछेसे उसके लिए कुछ बचता न था; और तो क्या, भात तक कम पड़ जाता। और किसीके खानेके समय मैं कभी उपस्थित नहीं रहा; परन्तु, ऐसा तो मैंने कभी नहीं देखा कि मुझे खाते वक्त कभी रोटी, दाल, भात, घी, तरकारी, कम पड़ी हो। इससे मुझे बड़ा बुरा मालूम होता था।

छोटेपनमें मैंने अपनी दादीके मुँह सुना है, वे मेरे लिए कहा करती थीं, 'लड़का आधा पेट खा-खाकर सूखके काँटा हो गया है,—कैसे बचेगा?' मगर मैं दादी-कथित 'भर-पेट' कभी नहीं खा सकता था। सूख जाऊँ, चाहें काँटा हो जाऊँ, मुझे 'आधा-पेट' खाना ही अच्छा लगता था। अब कलकत्ते आनेके बाद समझा कि उस आधे-पेट और इस आधे-पेटमें कितना अन्तर है! इस बातका मुझे कभी अनुभव नहीं हुआ कि किसीको भर-पेट खाने न मिले, तो आँखोंमें आँसू आ जाते हैं! पहले मैंने न-जाने कितनी बार बाबाकी थालीमें पानी डालकर उन्हें खाने नहीं दिया है, दादीके ऊपर कुत्तेके बच्चेको छोड़कर उन्हें नहाने-धोनेके लिए बाध्य किया है। फिर, उनका खाना नहीं हुआ; मगर, उनकी आँखोंमें आँसू कभी नहीं आये। दादी, बाबा, अपने घरके लोग,—मेरे पूज्य, जो मुझे खूब प्यार करते थे, उनके लिए मुझे कभी दुःख नहीं हुआ; बल्कि, जान-बूझकर उन्हें अध-भूखा और बिलकुल भूखा रखकर मुझे परम सन्तोष हुआ है। और, इस गदाधरको देखो,—न कुनबेका न गोतका,—इसके लिए मेरी आँखोंमें बिना बुलाये पानी आ जाता है।

कलकत्ते आकर मुझे यह हो क्या गया,—मेरी कुछ समझमें नहीं आता। आखिर आँखोंमें इतना पानी आता कहाँसे है, कुछ पता नहीं। मुझे किसीने रोते कभी नहीं देखा। किसी बातपर ज़िद पकड़ जानेपर पाठशालाके पंडितजीने मेरी पीठपर साबुतकी साबुत खजूरकी छड़ी तोड़ी हैं; फिर भी, वे मुझे कभी रुला नहीं सके। लड़के कहते, 'सुकुमारकी देह पत्थरकी है।' मैं मन-ही-मन

कहता, 'देह नहीं, बल्कि मन पत्थरका है। मैं नन्हें बच्चेकी तरह रोने नहीं लगता।' दर-असल रोनेमें मुझे बड़ी शरम मालूम होती थी,—अब भी होती है; पर, अब सम्हाले सम्हालता नहीं। छिपकर, जहाँ कोई देख न सके, रो लिया करता हूँ। जरा-सा रोकर झटपट आँखें पोंछ-पोंछके सम्हाल जाता हूँ। जब स्कूल जाता हूँ तो रास्तेमें सैकड़ों भिखारी भीख माँगते नज़र आते हैं। किसीके हाथ नहीं है, किसीके पैर नहीं हैं, कोई अन्धा है,—इस तरह न जाने कितने तरहके दुःखी देखता हूँ। मैं तो तिलक लगाकर खंजरी बजाकर जो 'जय राधे' कहकर भीख माँगते हैं, उन्हें ही जानता था। फिर ये सब भिखारी किस तरहके हैं! मैं भीतर-ही-भीतर बहुत ही दुःखित होकर कहता, 'भगवान्, इन्हें मेरे गाँवमें भेज दो।'

खैर, अभागे भिखारियोंकी बात जाने दो, अब मैं अपनी बात कहता हूँ। देखते देखते आँखें इसकी आदी हो गईं; पर, मैं 'विद्यासागर' न बन सका। बीच-बीचमें हमारे देशकी माता सरस्वती न-जाने कहाँसे आकर मेरे सिरपर सवार हो जातीं, मैं नहीं कह सकता। उनकी आज्ञासे कभी कभी मैं ऐसा सत्कर्म कर डालता था कि अब भी मुझे उन सरस्वतीजीसे नफरत हो जाया करती है। डेरेपर किसका कौन-सा अनिष्ट किया जा सकता है,—रात-दिन मैं इसी फिकरमें रहता।—एक दिनकी बात है, राम बाबून् घंटे-भर मेहनत करके अपनी धोती चुनकर रखी; वे शामको घूमने जायेंगे,—तब पहनकर जायेंगे। मैंने, मौका समझकर, उसे खोलकर सीधा करके रख दिया। शामको आकर धोतीकी हालत देखते ही बेचारे तकदीर ठोंककर बैठ गये। मेरी खुशीका क्या ठिकाना? फूला नहीं समाया।—जगन्नाथ बाबूका आफिस जानेका समय हो गया है, जल्दी जल्दी खा-पीकर किसी तरह आफिस तक पहुँचना चाहते हैं। मैंने ठीक मौकेसे उनकी अचकनके बटन काटकर फेंक दिये। स्कूल जानेसे पहले ज़रा झाँक कर देख गया,—बेचारे चिल्लाकर रोनेकी तैयारी कर रहे हैं। मैं खुशीके मारे रास्तेभर हँसता रहा। शामको आफिससे लौटकर बोले, 'मेरे बटन कम्ब्रखत गदाधरने चुराकर बेच डाले हैं, निकाल दो नालायकको।' जगन्नाथबाबूके बटन-हरणके मामलेपर भइया और राम बाबू भीतर-ही-भीतर खूब हँसने लगे। भइयाने कहा, 'कितने तरहके चोर होते हैं, कोई ठीक है, पर बटन तोड़कर बेच खानेवाला चोर तो आज ही सुना!'

जगन्नाथ बाबू भइयाकी इस चुटकीसे और भी आग-बबूला हो गये। बोले—  
‘नालायकने सबेरे नहीं लिये, शामको नहीं लिये, रातको नहीं लिये, ठीक  
आफिस जाते वक्त,—बदमाशी तो देखो ! दुर्गतिकी हद कर दी।’—उन्हें  
एक काला फटा कुरता पहनका आफिस जाना पड़ा।’

सब हँस पड़े, जगन्नाथ बाबूको भी हँसना पड़ा। पर, मैं नहीं हँस सका। मुझे  
डर हो गया,—कहीं गदाधरको सचमुच ही न निकाल दें। वह बेचारा बिलकुल  
बेवकूफ है, शायद कुछ कहेगा भी नहीं, चुपचाप सारा कसूर अपने ऊपर ले  
लेगा। अब ?

भइया शायद समझ गये कि किसने बटन लिये हैं। गरीब गदाधरपर कोई  
जुल्म नहीं किया गया। पर, मैंने भी उस दिनसे प्रतिज्ञा कर ली कि अब ऐसा  
काम कभी न करूँगा जिससे मेरे बदले दूसरेपर कोई आफत आवे।

ऐसी प्रतिज्ञा मैंने पहले कभी नहीं की; और कभी करता भी या नहीं,—नहीं  
कह सकता। सिर्फ गदाधरके कारण ही मुझे अपने मार्गसे विचलित होना पड़ा।  
मुझे उसने मिट्टी कर दिया।

इस बातको कोई नहीं कह सकता कि किस तरह किसका चरित्र सुधर-जाता  
है। पंडितजी, बाबा,—और भी कितने ही महाशयोंके लाख कोशिश करनेपर भी  
जिस बातकी प्रतिज्ञा मैंने कभी नहीं की,—और न शायद करता,—एक गदाधर  
महाराजका चेहरा देखकर उस बातकी प्रतिज्ञा कर बैठा। उसके बाद इतने दिन  
बीत गये,—इस बीचमें कभी मेरी प्रतिज्ञा भंग हुई या नहीं, मैं नहीं कह सकता।  
मगर, इतना जरूर है कि मैंने कभी जान-बूझकर कोई प्रतिज्ञा-भंग नहीं की।

अब, और एक आदमीकी बात कहता हूँ। वह था हम लोगोंका नौकर  
रामा। रामा जातिका कायथ या ग्वाला ऐसा ही कुछ था। कहाँका रहनेवाला  
था, सो भी मैं नहीं कह सकता। उस जैसा फुरतीला और होशियार नौकर मेरे  
देखनेमें नहीं आया। अगर फिर कभी उससे भेंट हो गई, तो उसके गाँवका  
पता जरूर पूछ लूँगा।

सभी कामोंमें रामा चरखेकी तरह घूमता रहता,—अभी देखा कि रामा कपड़े  
धो रहा है, तुरत देखता हूँ कि भइया नहाने बैठे हैं तो वह उनकी पीठ रगड़  
रहा है। उसके बाद ही देखा तो पान लगानेमें व्यस्त है। इस तरह,  
वह हरवक्त दौड़-धूप करता रहता। भइयाका वह ‘केवरिट’,—बड़ा

कामका प्यारा, नौकर था। पर मुझे वह देखा न सुहाता। उस नालायकके लिए अकसर मुझे भइयासे खरी-खोटी सुननी पड़तीं। खासकर गदाधरको वह अकसर तंग किया करता। मैं उससे बहुत चिढ़ गया था। मगर, इससे क्या होता,—वह ठहरा भइयाका ‘फेवरिट’ ! राम बाबू भी उसे फूटी आँखों न देख सकते थे। वे उसे ‘रूज’ (=‘रंगा स्यार’) कहा करते थे। उस समय इस शब्दकी व्याख्या वे खुद न कर सकते थे; मगर, हम यह खूब समझते थे कि राम दर-असल ‘रूज’ है। उनके चिढ़नेके अनेक कारण थे। मुख्य कारण यह था कि राम अपनेको ‘राम बाबू’ कहा करता था। भइया भी कभी कभी उसे ‘राम बाबू’ कहकर पुकारा करते थे। मगर राम बाबूको यह सब अच्छा न लगता था। खैर, जाने दो इन व्यर्थकी बातोंको—

एक दिन शामको भइया एक नया लैम्प खरीद लाये। बहुत बढ़िया चीज़ थी, करीब पचास-साठ रुपये दाम होंगे। शामको जब सब घूमने चले गये, तब मैंने गदाधरको बुलाकर उसे दिखाया। गदाधरने ऐसी बत्ती कभी नहीं देखी थी। वह बहुत ही खुश हुआ, और दो-एक बार उसने उसे इधर-उधर करके देखा-भाला। इसके बाद वह अपने कामसे चला गया। पर मेरी ‘क्यूरियासिटी’ (=कुतूहल) शान्त नहीं हुई।—मैं उसकी चिमनी खोलकर देखना चाहता था कि कैसे खुलती है। देखूँ, कि उसके भीतर कैसी मशीन है।—बहुत खोलकर हिलाया-डुलाया, इधर-उधर किया, घुमाने-फिरानेकी कोशिश की; पर, खोल न सका। बहुत ‘ऑब्ज़र्वेशन’के (=देख-भाल और सोच-विचारके) बाद मैंने देखा कि नीचे एक स्क्रू है, लिहाज़ा मैंने उसे घुमाया। घुमा ही रहा था कि चटसे उसका नीचेका हिस्सा अलग हो गया और जल्दीमें मैं उसे थाम न सका। नतीज़ा यह हुआ कि उसका शीशा टेबिलसे नीचे गिरकर चकनाचूर हो गया।



### ३

उस दिन बहुत रात बीते मैं लौटा। घर आकर देखा,—वहाँ बड़ी हाय-तोबा मची हुई है। गदाधरको चारों तरफसे घेरकर सब लोग बैठे हैं। गदाधरसे जिरहकी जा रही है। भइया खूब बिगड़ रहे हैं।

गदाधरकी आँखोंसे टपटप आँसू गिर रहे थे। वह कह रहा था—बाबूजी

मैंने इसको ज़रा छुआ जरूर था, पर तोड़ा नहीं; सुकुमार बाबूने मुझे दिखाया,— मैंने सिर्फ देखा, उसके बाद वे घूमने चले गये, मैं भी रसोई बनाने चला गया।

किसीने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया। प्रमाणित हो गया कि उसीने चिमनी तोड़ी है। उसकी तनखा बाकी थी, उसमेंसे साढ़े तीन रुपये काटकर नई चिमनी मँगाई गई। शामको जब बत्ती जलाई गई, तो सब बहुत खुश हुए; सिर्फ मेरी दोनों आँखें जलने लगीं। हर वक्त मनमें यही खयाल आने लगा,— मानो, मैंने उसकी माके साढ़े तीन रुपये चुरा लिये हैं।

तब मुझसे वहाँ रहा नहीं गया। रो-बिलखकर किसी तरह भइयाको राजी करके मैं गाँव पहुँच गया। सोचा था, दादीसे रुपये लाकर चुपकेसे साढ़े तीनकी जगह सात रुपये गदाधरको दे दूँगा। मेरे पास उस वक्त रुपये बिलकुल न थे। सब रुपये भइयाके पास थे। इसीलिए, रुपयेके लिए मुझे देश आना पड़ा। सोचा था, कि एक दिनसे अधिक नहीं ठहरूँगा। मगर, हुआ कुछ और ही। यद्यपि बाबाके कारजमें अब भी बहुत दिन बाकी थे, फिर भी, सात-आठ दिन वहाँ बीत ही गये।

सात-आठ दिन बाद फिर कलकत्ते पहुँचा। मकानमें पैसे रखते ही पुकारा, ‘गदा!’ पर किसीने जवाब नहीं दिया। फिर बुलाया, ‘गदाधर महाराज!’ अबकी बार भी जवाब नदारद! फिर कहा, ‘गदा,’ कि रामाने आकर कहा—छोटे बाबू, अभी आ रहे हैं क्या?

“हाँ, हाँ, अभी चला ही आ रहा हूँ। महाराज कहाँ है?”

“महाराज तो नहीं हैं।”

“कहाँ गया है?”

“बाबूने उसे निकाल दिया?”

“निकाल दिया?—क्यों?”

“चोरी की थी, इसलिए।”

पहले बात मेरी ठीकसे समझमें नहीं आई, इसीसे कुछ देर तक मैं रामका मुँह देखता रहा। राम मेरे मनका भाव ताड़ गया; ज़रा मुसकराकर बोला—छोटे बाबू, आप ताज्जुब कर रहे हैं! मगर उसे आप लोग पहचानते न थे,— इसीसे इतना चाहते थे। वह छुपी हुई डाइन जैसा था बाबू, उस भीगी बिल्लीको मैं ही अच्छी तरह जानता था।

किस तरह वह लुपी हुई डाइन था, और क्यों मैं उस भीगी बिल्लीको नहीं पहचान सका,—यह मेरी समझमें कुछ न आया । मैंने पूछा—किसके रुपये चुराये थे उसने ?

“ बड़े बाबूके । ”

“ कहाँ थे रुपये ? ”

“ कोटकी जेबमें । ”

“ कितने रुपये थे ? ”

“ चार रुपये । ”

“ देखा किसने था ? ”

“ आँखोंसे तो किसीने नहीं देखा, पर देखा ही समझिए । ”

“ क्यों ? ”

“ इसमें पूछनेकी कौनसी बात है ? आप घरमें थे नहीं, राम बाबूने लिये नहीं; जगन्नाथ बाबू ले ही नहीं सकते, मैंने लिये नहीं;—तो फिर गये कहाँ ? लिये किसने ? ”

“ अच्छा, तो तुने उसे पकड़ा है ? ”

“ रामने हँसते हुए कहा, और नहीं तो कौन पकड़ता ! ”

ठनठनियाका जूता आप लोग आसानीसे खरीद सकते हैं । ऐसा मजबूत जूता शायद और कहीं नहीं बनता । उसीसे मैंने उसकी खूब.....

मैं रसोईमें जाकर रो पड़ा । उसका वह छोटा-सा काला हुक्का एक कोनमें पड़ा था, उसपर धूल जम गई है । आज चार-पाँच रोज़से उसको किसीने छुआ भी नहीं, किसीने पानी तक नहीं बदला । दीवारपर एक जगह कोयलेसे लिखा हुआ है, ‘ सुकुमार बाबू, मैंने चोरी की है । अब मैं यहाँसे जाता हूँ । अगर जिन्दा रहा, तो फिर कभी आऊँगा । ’

मैं तब लड़का ही तो था । बिलकुल बच्चेकी तरह उस हुक्केको छातीसे लगाकर फूट-फूटकर रोने लगा । क्यों, इसकी वजह मुझे नहीं मालूम ।

फिर, मुझे उस मकानमें अच्छा नहीं लगने लगा । शामको घूम-फिरकर एक बार रसोईमें जाता और, दूसरे रसोइयाको खाना बनाते देख चुपचाप लौट

आता । अपने कमरेमें आकर किताब खोलकर पढ़ने बैठ जाता । कभी कभी मुझे भइया भी देखे नहीं सुहाते । रोटी तक मुझे कड़वी मालूम होने लगती ।



बहुत दिनों बाद, एक रोज़ मैंने भइयासे कहा—बड़े भइया, क्या किया तुमने ?  
“ किसका क्या किया ? ”

गदाने तुम्हारे रुपये कभी नहीं चुराये । सभी जानते हैं, मैं गदाधर महाराजको बहुत चाहता था ।

भइयाने कहा—हाँ, काम तो अच्छा नहीं हुआ, सुकुमार । पर, अब तो, जो होना था सो हो गया । लेकिन, रामको तूने इतना मारा क्यों था ?

“ अच्छे मारा था, क्या मुझे भी निकाल दोगे ? ”

भइयाने मेरे मुँहमें कभी ऐसी बात नहीं सुनी । मैंने फिर पूछा—तुम्हारे कितने रुपये वसूल हो गये ?

इया बड़े दुखित हुए, बोले—काम ठीक नहीं हुआ । तनखाके ढाई रुपये में सब काट लिये । मेरी इतनी इच्छा नहीं थी ।

बतब मड़कोंपर घूमा करता । दूरपर अगर किसीका मैली चादर ओढ़े । चट्टी चटकाते हुए जाते देखता, तो मैं फौरन दौड़ा दौड़ा उसके पास जाता; पर, मेरे मनका अरमान पूरा न होता, मेरी आशा नित्य निराशामें होने लगी । मैं अपने मनकी बात किससे कहूँ ?

तेब पाँच महीने बाद भइयाके नाम एक मनीआर्डर आया—डेढ़ रुपयेका । का मैंने उसी रोज़ आँसू पोंछते देखा । उसकी कूपन अभी तक मेरे पास जूट है ।

कितने वर्ष बीत गये, कोई ठीक है ! मगर आज भी गदाधर महाराज मेरे हृदयमें आधी जगह घरे बैठे हैं ।













